श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थमाला का चौदहवां पुष्प

प्र ति ध्व नि

लेखक—

परमश्रद्धेय पण्डितप्रवर प्रसिद्धवक्ता

राजस्थानकेसरी श्री पुष्कर मुनि म० के सुशिष्य

देवेन्द्र मुनि, शास्त्री, साहित्यरत्न

सम्पादक—

श्रीचन्द सुराना 'सरस'

प्रकाशक—

श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय

पदराड़ा (उदयपुर)

पुस्तक :
प्रतिध्वनि

लेखक :
देवेन्द्र मुनि शास्त्री, साहित्यरत्न

सम्पादक :
श्रीचंद सुराना 'सरस'

अर्थ सौजन्य :
नगराज चन्दनमल
३९, विट्ठलवाडी, बम्बई-२

प्रकाशक :
श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय
पदराड़ा जि० उदयपुर (राजस्थान)

प्रथम मुद्रण :
अगस्त १९७१

मुद्रक :
श्यामसुन्दर शर्मा
श्री प्रिंटर्स, राजा की मंडी
आगरा-२

मूल्य : ३)५० तीन रुपए पचास पैसे

समर्पण

जिनकी पवित्र प्रेरणा और पथ-प्रदर्शन से मेरी चिन्तन दिशाएं सदा आलोकित रही है। उन्ही परमादरणीय परमश्रद्धेय सद्‌गुरुवर्य राजस्थान केसरी पडितप्रवर श्रद्धेय श्री पुष्कर मुनि जी म० के कर कमलों में

—देवेन्द्र मुनि

लेखक की कलम से

गंभीर विचारो को पढते-पढते जब कभी मन ऊब जाता है, तो कहानियाँ और जीवनचरित्र पढकर मन की सुस्ती दूर कर लेता हूँ, इसीप्रकार गंभीरविषयो पर लिखते-लिखते जब मस्तिष्क विश्राम चाहने लगता है तो कथा-कहानियाँ और सूक्तियाँ लिखने लग जाता हू, इससे मस्तिष्क की थकान भी दूर हो जाती है, और नई स्फूर्ति से मन तरोताजा भी हो जाता है ।

पिछले तीन-चार वर्षों मे मैंने अनुभव किया कि कहानियाँ, जीवन-चरित्र वास्तव मे ही मानसिक विश्राम के साथ-साथ कर्तव्य की नई स्फूर्ति और प्रेरणा जगाने मे भी अद्वितीय सिद्ध हुई है । पाठक उन्हे चाव से पढता है, और उनसे प्रकट होने वाली प्रेरणा के प्रति बडे सीधे और प्रभावकारी ढंग से आकृष्ट होता है । जैसे गरिष्ट भोजन के साथ-साथ कुछ सुपाच्य और सुस्वाद भोजन भी आवश्यक होता है, वैसे ही गंभीर विषयो के अध्ययन के साथ-साथ कुछ हलका और रुचिकर अध्ययन भी आवश्यक होता है । मन की यह आवश्यकता कथा कहानियाँ आदि से पूरी हो जाती है ।

इधर मे छोटे-छोटे प्रेरक रूपक, कहानियाँ आदि की चार-पाँच पुस्तके मैंने लिखी और वे प्रकाशित हुई । पाठको ने उन्हे चाव से अपनाया, विद्वानो ने भी उन्हे सराहा और सामान्य

जिज्ञासुओ को भी वे रुचिकर लगी। इससे मेरा उत्साह बढता गया और कहानियाँ लिखता चला गया।

मेरे साहित्यसर्जन की मूल प्रेरणा श्रद्धेय गुरुदेव श्री पुष्कर मुनि जी म० सा० का वरद आशीर्वाद ही रहा है। उनकी जीवंत प्रेरणाएँ यदि मुझे न मिल पाती, तो संभव है मैं साहित्य जगत मे आज भी क-ख से आगे नही बढ पाता। अत यह जो कुछ ही बन पडा है, वह तो मैं अनन्य श्रद्धा के साथ उन्ही का वरदान मानता हूँ।

मेरे साहित्यिक कार्यो मे परमस्नेही श्रीचन्द जी सुराना 'सरस' का भी जो सहयोग रहा है, मैं उसे विस्मृत नही कर सकता। मेरी अनेक पुस्तको का सुन्दर सम्पादन उन्होने किया है और बड़े स्नेह के साथ। प्रस्तुत 'प्रतिध्वनि' मे भी उनकी लेखिनी का रस-स्पर्श हुआ है और इससे कहानियो व रूपको मे कुछ वैशिष्ट्य आया है।

मेरे अन्य साहित्यिक सहयोगियो को भी मै कैसे विस्मृत कर सकता हूँ ? मैं जो कुछ लिखता हूँ, पढता हू वह सब आखिर किसी सहयोग के बिना कैसे सम्भव हो पाता ? आशा है मेरे साहित्य के पाठक भी मुझे इसीप्रकार सहयोग कर साहित्य सर्जना के मेरे उत्साह को बढाते रहेगे।

श्रीमेघजी थोभण जैनधर्मस्थानक
१७० कादावाडी, बम्बई-४
आषाढीपूर्णिमा सं २०२८

—देवेन्द्र मुनि

सम्पादकीय

श्री देवेन्द्र मुनि जी स्थानकवासी जैनसमाज की नई पीढी के तरुण साहित्यकार है। उन्होने साहित्य की अनेक विधाओ पर लिखा है, और जमकर लिखा है। वे अध्ययनशील है, अनुसंधित्सु है और उदार समीक्षक भी है, इसलिए उनकी कृतियो मे, चाहे वह शोधनिबन्ध है, ऐतिहासिकचर्चा है, जीवनचरित्र है, विचारसूक्तियाँ है, या कहानी और रूपक है, प्राय. उनमे अध्ययन, अनुसंधान और चिंतन मनन की गहरी छाप मिलती है।

प्रस्तुत पुस्तक उनका एक कहानी संग्रह है, किन्तु यह सिर्फ कहानीसंग्रह न होकर एक विचार-ग्रन्थ भी है। इसमे प्रेरक विचार, अनुभूत सूक्त एवं महापुरुषो की उक्तियाँ भी है। जब मुझे सम्पादन के लिए यह पुस्तक मिली तो मैं इसकी कहानियाँ पढकर प्रफुल्ल हो उठा। प्राय कहानियो मे एक-न-एक जीवन-स्पर्शी प्रेरणा छिपी है, जीवन का कोई गहरा सत्य व्यक्त होता-सा लगता है, और लगता है कोई प्रज्ञा-पुरुष अपने ज्ञान-चक्षुओ से देखे हुए जीवन एवं जगत के रहस्य - रोमाच को अनुभव की वाणी मे खोल कर रख रहा है।

कहानियो को भाव-भाषा आदि की दृष्टि से परिमार्जित करने के बाद इसके नामकरण का प्रश्न मेरे मन मे आया तो मैं कुछ क्षण पुस्तक की कहानियो को ही उलट-पुलट कर पढने लगा। पुस्तक

स्वर्गीय श्रीमान् सेठ हस्तीमल जी मेहता : एक परिचय

शरद् पूर्णिमा के चाँद की तरह जो अपनी दुग्ध - धवल ज्योत्स्ना से जन-जन के मन को मुग्ध करता हो, उस लुभावने और सुहावने जीवन को कौन विस्मृत हो सकता है ? शायर के शब्दो मे कहा जाय तो—

जिन्दगी ऐसी वना जिन्दा रहे दिलशाद तू।
जव न हो दुनियाँ मे तो, दुनिया को आये याद तू ॥
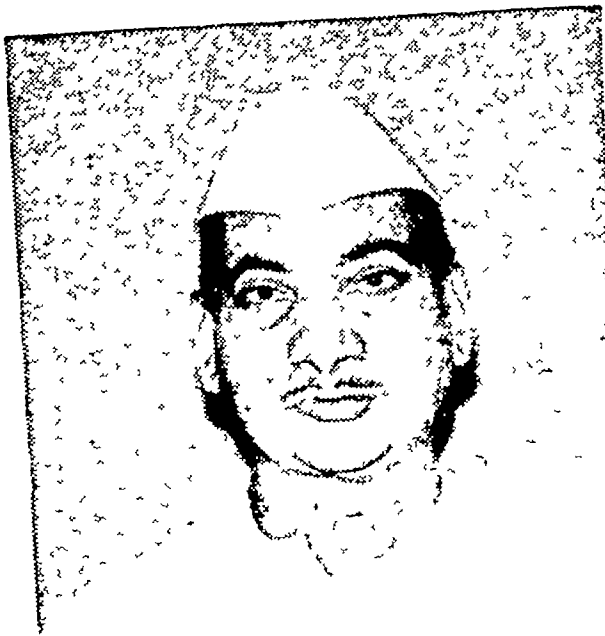
दानवीर धर्मप्रेमी उदारचेता
स्व० श्रीमान् सेठ हस्तीमलजी
सागरमलजी मेहता
सादड़ी (मारवाड)

लम्बा कद, गौर वर्ण, भव्य ललाट, हँसते होठ, खिले लोचन शात और तेजोद्दीप्त मुखमुद्रा, इन सभी ने मिलकर ऐसे व्यक्तित्व का निर्माण किया था जिसे लोग दानवीर सेठ हस्तीमल जी मेहता के नाम से पहचानते थे। जितना उनका बाह्य व्यक्तित्व आकर्षक था, उतना ही उनका आन्तरिक जीवन भी मन-मोहक था। वे प्रकृति से सरल, स्वभाव से कोमल, और हृदय से उदार थे। वे केवल गरजनेवाले मेघ ही नही, बरसनेवाले मेघ थे और जब बरसते थे तो जमकर बरसते थे।उन्होने अपनी छोटी उम्र मे अत्यधिक उदारता के साथ दानदिया था। अनाथ, विधवाएँ और गरीब छात्रो को उन्होने गुप्तरूप से सहायताएं दी थी। कब ? किसे ? कितनी सहायता दी, उसका पता उनके अतिरिक्त घर के किसी सदस्य को नही होता था। वे उसे दान नही, किन्तु अपना कर्तव्य समझते थे। किसी भी प्राणी को कष्ट मे देखकर उनका हृदय दया से द्रवित हो जाता था।

उनका जन्म राजस्थान की वीरभूमि अरावली पहाड़ की तलहटी मे बसे हुए सादडी (मारवाड) मे हुआ,। जहाँ पर स्थानकवासी मुनियों का विराट् साधु सम्मेलन सन् १९५२ मे हुआ और श्रमणसघ का निर्माण हुआ। आपके पूज्य पिता श्री का नाम सेठ सागरमल जी था और मातेश्वरी का नाम राधाबाई था। आपके ज्येष्ठ भ्राता का नाम पुखराज जी है। जो पूना (महाराष्ट्र) के लब्ध प्रतिष्ठित व्यापारियो मे से है।

सादडीनिवासी बालचन्दजी तलेसरा की सुपुत्री धर्मानुरागिणी शान्ताबाई के साथ आपका विवाह सम्पन्न हुआ। आपके पॉच

पुत्र हैं। १ चन्दनमलजी २ चम्पालालजी ३ मोहनलालजो ४ दिलीपकुमार और ५ महेन्द्रकुमार।

मैंट्रिक का अध्ययन सम्पन्न कर आप सादडी से वम्बई आये, प्रारंभ मे दूसरे के यहाँ पर नौकरी की। फिर सम्वत् २००१ मे वम्वई विठलवाडी मे 'नगराज चन्दनमल' के नाम से छतरियो की दुकान की। भाग्य और पुरुषार्थ ने साथ दिया, व्यापार चमक उठा। जिस प्रकार पैसा कमाते रहे, उसीप्रकार उदारता के साथ दान भी देते रहे। पूना मे स्थानक वनाने के लिए २५ हजार रुपए दिये। अधेरी और कादीवली (वम्वई) मे आपके नाम से स्थानक के विशाल हॉल है। सादडी (मारवाड) मोटर स्टेंड पर मुसाफिरखाना भी आपने वनाया है। जो भी सहयोग के लिए आपके पास आता, उसे आप प्रेमपूर्वक सहयोग देते। आप कोट (वम्वई) सघ के वर्षो तक मत्री पद पर रहे।

आपका जन्म सन् १६१५ मे हुआ था और ५२ वर्ष की लघु वय मे १६ मार्च, १६६७ मे आपका स्वर्गवास हुआ।

श्रीमान् हस्तीमल जी साहव की पुण्यस्मृति मे उनकी धर्म-पत्नी श्रीमती शान्तावाई के आर्थिक सौजन्य से प्रस्तुत ग्रन्थ का प्रकाशन हो रहा है।

पूज्य पिता की तरह ही श्रीमान् चन्दनमल जी आदि उनके सभी पुत्र धर्मनिष्ठ हैं। उनसे समाज को वहुत आशा है— वे सभी अपने पूज्य पिता की तरह यशस्वी वनें, यही मंगल कामना—

—राजेन्द्रकुमार मेहता, बम्बई

अनुक्रम

१

अप्पदीपो भव

भगवान महावीर का एक वचन है—

जे अणण्णदंसी से अणण्णारामे

—आचारांग सूत्र

जो अनन्यदर्शी अर्थात् आत्मा के सिवाय और किसी को नही देखता है, वह आत्मा के सिवाय अन्यत्र कही नही रमता।

यह सत्य है कि आत्मद्रष्टा आत्मा में ही रमता है, और बाह्यद्रष्टा बाहर में भटकता रहता है। बाहर में देखने वाले की आकाक्षाए-धन, वैभव, सत्ता और यश पर मडराती है, पर जब दृष्टि बाहर से मुडकर भीतर को चली जाती है, तो अपने आप में सब कुछ पा लेती है। वह सचमुच मे अप्पदीप-आत्मदीप—अपना दीपक स्वयं बन जाता है।

एक कम्बोडियन बौद्ध कथा है। कम्बोज के सम्राट् तिङ्-मिङ्. की राजसभा में एक बौद्ध भिक्षु आया और सम्राट् से कहने लगा—महाराज ! मैं त्रिपिटकाचार्य हूँ।

पन्द्रह वर्ष तक सारे वौद्ध जगत का तीर्थाटन कर मैंने धर्म के गूढ तत्त्वो का रहस्य प्राप्त किया है। मेरी भावना है कि कम्वोज का शासन भगवान तथागत के आदेशो के अनुसार चले, मैं राज्य का धर्म-गुरु बनना चाहता हूँ।'

धर्मज्ञ सम्राट् भिक्षु की कामना जान कर किंचित् मुस्कराये—"आपकी सदिच्छा मगलमयी है, किन्तु अभी आप धर्मग्रन्थो का एकवार पुन· पारायण कीजिए।"

भिक्षुक का चेहरा क्रोध से लाल पड गया। पर क्रोध को भीतर ही दवाए वे वहाँ से लौट आये। सोचा—'सम्राट् को रुष्ट करने से क्या लाभ, एक बार सब गन्थो को पुन पढ डालना चाहिए।'

भिक्षु एक वर्ष वाद पुन· सम्राट् की सभा मे उपस्थित हुआ और वोला—"मैने सब ग्रन्थ दुवारा पढ डाले है, अब राज्य-गुरु का पद मुझे मिलना चाहिए ।"

सम्राट् ने पुन मुस्कराकर कहा—"भदन्त ! एक वार और पढ लीजिए।"

भिक्षु क्रोध में तमतमा उठा। यह क्या मजाक कर रहे हैं। पर वह चुपचाप लौटकर नदी के एक शात तट पर चला गया। अपमान का दंश भीतर मे पीडित कर रहा था। उसने शाति के लिए साध्य प्रार्थना की और ग्रन्थ को लेकर बैठ गया। पढते-पढते उन्ही ग्रन्थो के शब्द नयी-नयी अर्थ चेतना लेकर उसके अन्तर मे जागने लगे, वह उन्ही के रहस्यो मे खो गया।

एक वर्ष बीत जाने पर भी वह सम्राट् की सभा में नही पहुँचा तो सम्राट् तिङ्-मिङ् स्वय उसके चरणो में पहुँचे। देखा वह तो तन-मन की सुधि भूले बस अन्तर्ध्यान में लीन है। सम्राट् ने प्रार्थना की—"भगवन्! चलिये! धर्माचार्य का आसन सुशोभित कीजिये!"

भिक्षु की समस्त आकाक्षाए समाप्त हो चुकी थी। उसने धर्मग्रन्थो के सच्चे रहस्य को पालिया था। मद-स्मित के साथ बोला—'राजन्! सद्धर्म उपदेश का नही, आचरण का विषय है। उपदेश में निरा अहंकार है, आचरण में आनन्द है। अब मुझे किसी 'पर' की आकाक्षा नही। भगवान का एक ही वाक्य मेरे हृदय को प्रकाशित कर गया है—**अप्पदीपो भव** स्वय अपने दीपक बनो।

२
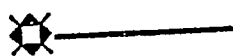
स्वरूप भावना

ससार के दर्शन–ईश्वर के सम्बन्ध मे आज भी उलझे हुए हैं। अनन्त-अनन्त काल से चिन्तन करता हुआ मानव मन ईश्वर के रूप और स्वरूप की घाटियो मे आज भी भटक-भटक रहा है।

विश्व के ईश्वर-सम्बन्धी विचारो में प्राय. परोक्षानुभूति ही मुख्य है। और वह सब की स्वतत्र या अनुकृत होती है। अबतक के विचारो का अनुशीलन करने पर चार विचार सूत्र मेरे ममक्ष आ रहे है।

१. स्वामि-दास भावना
२ पिता-पुत्र भावना
३ सखा-भावना
४ स्वरूप-भावना

एक दार्शनिक ने एक बार ईश्वर के विरह से व्याकुल होकर एक ऊचे पर्वत पर चढकर ईश्वर को पुकारा—

स्वामिन् ! मैं तेरा दास हूँ, मेरी इच्छाओं का तू ही स्वामी है, तू ही मेरे भाग्य का विधाता है, मुझे दर्शन दे, मैं तेरी आज्ञाओ का पालन करूंगा।

ईश्वर ने कुछ भी उत्तर नही दिया। दार्शनिक और चिन्तन करने लगा।

एक दिन फिर उसने उसी पर्वत पर चढ कर पुकारा—

हे परम पिता ! मैं तेरी सन्तान हूँ, तुमने ही मुझे पैदा किया है, मेरे पास जो कुछ है, तेरी देन है, मेरी प्रार्थना सुन और मुझे अपनी छवि दिखा !

ईश्वर तब भी मौन रहा। दार्शनिक पुन ईश्वर की खोज मे लीन हो गया और एकदिन फिर पहाड की चोटी पर चढ कर ईश्वर को सम्बोधित किया—"हे प्रभु ! मेरे मन में रात दिन तुम बसे हो, जैसे युवति के मन में उसका प्रेमी ! तुम ही सच्चे मित्र हो, तुम्ही सच्चे सखा हो, अब आओ ! और मेरी अन्तर पीडा को शात करो।"

ईश्वर की ओर से कोई प्रतिध्वनि लौटकर नही आई। दार्शनिक तब भी विचलित नही हुआ और सोचता रहा।

एक दिन पुन असीम साहस बटोर कर उसने गंभीर स्वर से आह्वान किया—"हे परमात्मा ! मैं वही आत्मा हू, जो एक दिन परमात्मा बनेगा। मैं पृथ्वी पर पडा मूल हू, तुम आकाश में खिले फूल हो। मैं और तुम दो नही,

एक ही रूप के दो स्वरूप है। मैं ही तू है, तू ही मैं हू। अब मैं तुम्हे नही पुकारूगा।"—और दार्शनिक ने अपने अन्तर को निहारा तो वहा परमात्मा खडा उसी को पुकार रहा था—

ब्रह्म तत् त्वमसि*—"वह ब्रह्म तू ही तो है! जिसे पुकार रहा है।"

---

* विवेक चूडामणि २२५

३
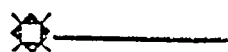
प्रतिध्वनि

इस ससार में सर्वत्र प्रतिदान और प्रतिध्वनि का सिद्धान्त व्याप्त है। प्रेम देने वाले को प्रेम मिलता है, द्वेष वरसाने वाले को द्वेष! रावण और दुर्योधन ने ससार मे युद्ध और घृणा-द्वेष के बीज डाले तो उन्हे मृत्यु, निंदा और विद्वेप के ही फल प्राप्त हुए, जबकि राम और धर्म-पुत्र को प्रेम और श्रद्धा की मालाएँ अर्पित की गई, चूँकि उन्होने प्रेम और स्नेह की फूलो की क्यारिया लगाई थी!

अथर्ववेद का एक वचन है—**यश्चकार स निष्करत्**—(अथर्व २।६।५) जिसने जैसा किया, वैसा ही पाया। इस पर जैसे भाष्य करते हुए तथागत बुद्ध का एक वचन मुझे याद आ गया है।

हन्ता लभति हन्तारं जेतारं लभते जयं—(सयुत्त-निकाय १।३।१५) मारने वाले को मारने वाला और जीतने वाले को जीतने वाला मिल जाता है। वास्तव में

यही तो प्रतिदान, प्रतिछाया, या प्रतिध्वनि का सिद्धान्त है। जैसी आकृति होगी, दर्पण मे वैसी ही प्रतिध्वनि दीखेगी। जैसी ध्वनि होगी, कूए और पहाडियो मे टकरा कर वैसी ही प्रतिध्वनि लौटेगी।

एक आश्रम था, पहाडियो की तलहटी मे, नदी के किनारे प्राकृतिक सुषमा की गोद मे। एक देश का राजकुमार वहाँ के आचार्य के पास अध्ययन करने को आया।

एक दिन सध्या के समय राजकुमार हवा खाने के लिए तलहटी मे घूमता हुआ आगे पहाडी घाटी मे चला गया। घाटी मे वह बहुत आगे चला गया और संध्या का झुरमुटा होने लग गया। हवा के झौके से पेड-पत्तो की मर्मर ध्वनि हुई तो राजकुमार को लगा—पास की घाटी मे कोई छिपा है। वह कुछ कदम पीछे लौटा तो उसे लगने लगा जैसे कोई छुपे-छुपे उसका पीछा कर रहा है। उसने इधर-उधर देखा और भय से भर्रायी आवाज मे पुकारा—"कौन है?"

पहाडियो के अन्तराल से उतने ही जोर से प्रतिप्रश्न गूंज उठा "कौन है?"

अब तो राजकुमार सहम गया, भय से उसके हाथ-पैर कांपने लग गये। ठडी हवा मे भी सिर पर पसीने की बूंदे टपकने लग गई। अपने आप को ढाढस बधाने के लिए उसने फिर जोर से पुकारा—'कायर! डरपोक! कहाँ छिपा है?'

वैसी ही भर्भराती आवाज गूज उठी—"कायर ! डरपोक ! कहाँ छिपा है ?"

राजकुमार के पैर डगमगा उठे, छाती धडकने लग गई, उसके हाथ में कोई शस्त्र भी नही था, और अब निश्चय हो गया कि अवश्य ही कोई उसकी जान लेने के लिए छिपा बैठा है। उसने छाती को हाथ से दबाया और एक वार साहस बटोर कर खूब जोर से चिल्लाया—"मैं मार डालूँगा।"

पहाडियो से प्रतिध्वनि गूज उठी—'मैं मार डालूगा।' राजकुमार पसीने से तरबतर हो गया, सिर पर पाव रखकर दौड़ा आश्रम की ओर। उसके पैरो की प्रतिध्वनि ही उसे लग रही थी, जैसे वह दुष्ट उसका पीछा कर रहा है, पर मुडकर देखने की हिम्मत उसमें नही रही। वह हाफता-हाफता आश्रम के द्वार पर पहुचा और मूर्च्छा खाकर गिर पडा।

आचार्य दौडकर आये। राजकुमार का सिर गोदी मे लेकर जल छिडका। राजकुमार होश में आया तो उसने सव बात सुनाई।

मानव-मन के पारखी आचार्य ने मुक्तहास के साथ कहा—"वत्स ! तुम उससे कैसे डर गये ? वह तो वहुत ही भला आदमी है, किसी चींटी को भी कष्ट नही, देता, बच्चो से तो वह वहुत ही प्यार करता है। तुम कल फिर वही जाना और जैसा मैं कहूँ वैसा पुकारना।"

दूसरे दिन राजकुमार फिर उसी पहाडी घाटी मे गया और आचार्य के कहे अनुसार आवाज लगाई–"मेरे मित्र ! इधर आओ !"

प्रतिध्वनि आई—"मेरे मित्र ! इधर आओ !"

इस मित्रता की पुकार से राजकुमार का मन आश्वस्त हो गया, उसने और जोर से कहा—"मै तुम्हे प्रेम करता हूँ।"

पहाडियाँ और जगल जैसे एक साथ पुकार उठे—"मै तुम्हे प्रेम करता हू।"

राजकुमार का हृदय सचमुच निर्भय हो गया। उसने हृदय की सच्चाई से पुकारा—"हम सब मित्र है।" अब तो जैसे पहाडो का चप्पा-चप्पा उसे पुकारता सुनाई पडा—"हम सब मित्र हैं।"

जीवन और जगत मे सर्वत्र प्रतिध्वनि का यही सिद्धान्त लागू है। शत्रु को शत्रु और मित्र को मित्र की प्रतिध्वनि सुनाई पडती है। "फूल को फूल और काँटे को काँटा।"

४

अपनी-अपनी कल्पना : अपना-अपना ईश्वर

●

ईश्वर क्या है ? और क्या करता है ? यह प्रश्न आज भी उतना ही विकट है जितना मानव के चितन काल की प्रथम वेला मे था ! मानव की ईश्वर सम्बन्धी धारणाओ और मान्यताओ पर विचार करने पर कभी कभी आश्चर्य होता है, कभी कभी हंसी आती है, और कभी-कभी खेद होता है।

लगता है मानव के मन में जिस समय जैसा विचार-बिम्ब बना उसने वैसा ही प्रतिबिम्ब वड लिया ईश्वर के रूप में। जिसकी जैसी भावना रही, उसने वैसा ही भगवान तैयार कर लिया।

देखिए विभिन्न धर्म परम्पराओ के ईश्वर का रूप। ईश्वर का एक रूप है—पुरन्दर ! अर्थात् गाँवो को उजाडने वाला। एक रूप है बलिप्रिय—गाय, घोड़ा और मनुष्य

के रक्त-मांस की वलि चाहने वाला। एक रूप है—सर्व-शक्तिमान्—अर्थात् जैसा चाहे वैसा करने वाला—मनमोजी! अथवा जिसकी लाठी उसकी भैंस का सिद्धान्त-वादी। एक ईश्वर है-जो मनुष्यो के रत्ती-रत्ती भर पापो का हिसाब रखता है और उन्हे निर्दयता पूर्वक दण्ड भी देता है, वह न्यायाधीश है। एक रूप है—दयालु! जगत्पिता! वडे से वडा पापी भी भयकर जुल्म करके उसकी शरण मे पहुँच गया तो वह उसे माफ कर देता है। एक ईश्वर मनुष्यो के दु ख और पीडाओ का नाश करने स्वय अवतार धारण करता है, तो एक इस धरती पर स्वय न आकर अपने दूत अथवा पुत्र को भेजकर ही वह काम करा देता है। एक ईश्वर है-जो कयामत के दिन सव मुर्दो को कब्र से बुलाकर उनके न्याय-अन्याय का फैसला करता है।"

ईश्वर की इन विचित्र एव विभिन्न कल्पनाओ का मूल है—मानव मन की परिस्थितियाँ, कल्पनाए और आवश्यकताए। जिसे, जिस समय जिस शक्ति की अपेक्षा हुई, उसने ईश्वर के उसी रूप की कल्पना करली। संत तुलसीदास जी के शब्दो मे—

जाकी रही भावना जैसी
प्रभु मूरत देखी तिन तैसी!

एक अरबी लोक कथा है—

एक वार विल्लियो का एक झुड एक ऊँचे पहाड को चोटी पर एकत्र हुआ। एक भारी भरकम भूरी विल्ली वड़े

ऊँचे स्वर में बोल रही थी—'बहनो ! बहुत दिनो से हम सब उपवास करके ईश्वर की आराधना में लगी है, आज सब मिल कर ईश्वर की प्रार्थना करो ! ईश्वर वडा कृपालु है, पूरी श्रद्धा के साथ की हुई हमारी प्रार्थना वह जरूर सुनेगा और सचमुच आकाश से चूहो की वर्षा होगी ।'

उस झुड के पास मे ही एक मोटा ताजा कुत्ता घूम रहा था। बिल्लियो की बात सुनकर उसे हँसी आई और वह आकाश की ओर मुह करके कहने लगा—'मूर्ख अन्धी बिल्लियो ! कभी तुम्हारे वाप-दादो ने भी प्रार्थना की थी और चूहो की वर्षा देखी थी ? किताबो मे लिखा है, जव भी ईश्वर की पूजा होती है और प्रार्थनाए की जाती है तव तब आसमान से चूहो की नही, हड्डियो की वर्षा होती है ।'

५

भारतीय नारी का आदर्श

भारतीय नारी-आत्म-सयम एव शालीनता की मूर्ति रही है। स्नेह एव प्रेम की प्रतिमा होते हुए भी उसने सदा नीति एव सयम की मर्यादा का पालन किया है। किसी पर हृदय निछावर करके भी उसने अपने धर्म एवं रीति-नीति की रक्षा की है। पति से पीडा एव अपमान के विप घूंट पाकर भी वह क्षमा का अमृत वर्षाती रही है, क्षणिक आवेश मे उसने प्रेम के पवित्र बंधन को नही तोडा। उसने जगत् के अपराधो को क्षमा कर सद्‌भाव एव स्नेह की धारा वहायी है—देखिए भारतीय सस्कृति के तीन उज्ज्वल चरित्र।

१—

हिमराज की पुत्री पार्वती ने शिवजी के लिए कठोर तपस्या की। उसकी तपस्या से प्रसन्न शिवजी पार्वती के निकट आये और स्नेह-गद्‌गद् होकर बोले—"आज से मैं तुम्हारा तप क्रीत दास हूँ।"

पार्वती ने सकुचाते हुए कहा—"देव ! मेरा मनोरथ सफल हुआ ! मैं आपको अपना मन तो पहले ही दे चुकी हूँ किन्तु यह शरीर तो जन्म देने वाले का है, इसे उन्ही (पिता) से दान स्वरूप प्राप्त कर उनका सम्मान बढाइए—

मनस स्त्वं प्रभुः शम्भो ! दत्तं तच्च मया तव !
वपुषः पितरावेतौ सम्मानयितुमर्हसि ।

—स्कन्द पुराण

यह है एक उज्ज्वल आदर्श, जो मन के हाथसे निकल जाने पर भी कभी अनुचित आचरण करने की भूल नही करने देता !

२·—

तपोवन मे शकुन्तला-दुष्यत का प्रथम मिलन हुआ। दुष्यन्त प्रेमोन्मत्त होकर ऋषि कन्या को ग्रहण करना चाहते थे, वे उसे पाने उतावले हो उठे। शकुन्तला उठकर जाने लगी, तो प्रेम-विह्वल दुष्यत ने रोकना चाहा। शकुन्तला ने नीची आँखे किए विनम्रता पूर्वक कहा—

पौरव ! रक्ख अविणअं ।
गअण संततावि ण सु अत्तणो पहवामि ।

—अभिज्ञान शाकुन्तलम्

'हे पुरुवशी ! शिष्टाचार की मर्यादा न तोडो ! यद्यपि मैं तुम्हे प्यार करती हूँ, परन्तु मैं स्वतंत्र नही हूँ, पिता कण्व की अनुमति पर ही हमारा मिलन हो सकता है।'

यह है, इच्छा पर, प्यार की बुभुक्षा पर संयम का, कुल मर्यादा का पवित्र अकुश ! मन मे चाहकर भी विना पिता की अनुमति के किसी पुरुप का स्पर्श तक नही कर सकती वह !

३ —

और यह है एक आदर्श—जो अन्याय, अपमान से प्रताडित होकर भी पति के लिए कभी दुर्भाव से कलुषित नही हुई, उलटा अन्याय व कष्ट को अपने कर्म का दोप मानकर उसके पवित्र प्रेम की जन्म-जन्म मे आकाक्षा करती रही।

राम की आज्ञा से लक्ष्मण जव सीता को वन मे छोड कर लौटने लगे तो सगर्भा सीता की मन स्थिति कितनी दयनीय और कितनी दु खमय रही होगी ? अग्नि परीक्षा द्वारा शुद्ध प्रमाणित नारी को यो वन मे छोड देना कितना वडा अन्याय था ? पर तब भी महासती सीता के मन मे राम के प्रति कोई दुर्भाव पैदा नही हुआ। अपने सच्चे पतिप्रेम, एव शील सौजन्य का परिचय देते हुए उसने लक्ष्मण के साथ राम को सदेश भेजा—

> साहं तपः सूर्य - निविष्टदृष्टि
>
> रूर्ध्वं प्रसूतेश्चरितुं यतिष्ये।
>
> भूयो यथा मे जननान्तरेऽपि
>
> त्वमेव भर्ता न च विप्रयोगः।

—रघुवश १४।१६

'मैं प्रसूति कर्म से निवृत्त होने के वाद सूर्य बिम्ब के सामने एक टक आँख लगाकर ऐसी घोर तपस्या करूंगी, जिसके प्रभाव से अगले जन्म में मुझे पुन· तुम्ही पति-रूप में प्राप्त होओ और इस जन्म की भाँति फिर तुमसे मेरा कभी भी वियोग न हो !'

यह है एक अमर आदर्श—जो कष्टो की चिता में डालने वाले पति को भी हृदय का अनन्त स्नेह समर्पित कर अगले जन्म में पुनः उसे प्राप्त करने के लिए तपस्या करने का संकल्प करती है !

युग की वर्तमान हवाओ मे बहने वाली नारी जो सभ्यता और सस्कृति की बाते करती है, क्या अपने इन सास्कृतिक आदर्शो पर गहराई से विचार करेगी ?

६

अमूल्य श्लोक

•

संस्कृत साहित्य के प्रसिद्ध महाकाव्य 'किराता-र्जुनीयम्' के प्रणेता कविवर भारवि प्रारभ में अत्यंत दरिद्र थे। उनकी पत्नी सदा ही उनके काव्य पर व्यग्य कसती रहती—'वाज आये ऐसे कवित्व और पांडित्य से ! घर मे खाने को दाना नही, अग ढकने को वस्त्र नही, छप्पर से पानी टपक रहा है और आप हैं कि काव्य लिखे जा रहे है। इससे तो अच्छा था कि काव्यो को जला डालते और राजा की नौकरी कर लेते।'

पत्नी की व्यंग्योक्ति कविवर के हृदय को वेध गयी। वास्तव मे घर की व पत्नी की दुर्दशा से स्वय कवि अत्यंत दुखी थे। पत्नी के ताने पर उनका हृदय भीतर-ही-भीतर रो पडा, और अव अपने झूठे स्वाभिमान को तिलाजलि दे, अपना काव्य एक वस्त्र में लपेट कर कवि-वर राज दरवार की ओर चल पडे। दीन वेश मे राज-सभा की ओर जाते उनका स्वाभिमान कचोट रहा था,

पॉव लडखडा रहे थे, पर करे भी क्या ? दुर्भाग्य से प्रताडित कवि चलते-चलते एक सरोवर के किनारे जा पहुचे। भयकर धूप से खिन्न हो शीतल हवा का सुखद-स्पर्श पाने वहाँ विश्राम करने लगे। सरोवर में खिले हुए कमलो को देखकर कवि हृदय विचार मग्न हो गया—'ये प्रफुल्ल कमल भी रात्रि में कुम्हला जाते है, और पुन सूर्य उदय होने पर मुस्कराने लगते है। इस छोटे से जीवन क्रम में भी सुख-दुख आता रहता है, तो मै फिर दुख व दरिद्रता से घबराकर आज बिना बुलाये ही राज दरबार में जाकर अपना स्वाभिमान क्यो गँवा रहा हूँ ?'

कवि का हृदय चिन्तन मे डूब गया। वही सकल्प-विकल्प में उलझे एक कमल पत्र पर उन्होने पत्थर की नौक से एक श्लोक लिखा—

सहसा विदधीत न क्रिया-
मविवेकः परमापदां पदम्
वृणुते ही विमृश्यकारिणं
गुणलुब्धाः स्वयमेव संपदः ॥

—कोई काम सहसा नही करना चाहिए। अविवेक ही तो बडी-बडी विपत्तियो का कारण है। सोच-विचार कर कार्य करने वाले के पास सम्पदाए स्वय चली आती है।

श्लोक लिखकर जैसे ही कमल पत्र को रखा कि उधर से महाराज स्वय आखेट के लिए घूमते हुए उधर आ निकले। कविवर ने ज्यो ही महाराज को देखा चुप-

चाप वहाँ से हटकर अन्यत्र चले गए।

राजा ने वही छाया मे विश्राम किया। कमल पत्र पर वह श्लोक पढा तो राजा को वहुत ही सुन्दर लगा। उन्होने कमल पत्र उठा लिया और उसे सोने के अक्षरो मे खुदवाकर अपने शयन कक्ष में टाग दिया।

एक वार महाराज आखेट के लिए वाहर गये। पाँच-छ दिन वाद लौटे। रात्रि का समय था, अत· महाराज सीधे अंत पुर मे चले गये। वहाँ महारानी के पास ही एक युवक को सोया देखकर राजा क्रोध मे आगवबूला हो गये। दोनो को एक ही तलवार के वार में समाप्त करने के विचार से ज्यो ही तलवार खिची कि ऊपर श्लोक की तरफ राजा की दृष्टि चली गई। क्षणभर राजा के हाथ रुक गए, पलके श्लोक पर जम गई। पढते-पढते राजा का क्रोध कुछ शिथिल पड गया। तलवार हाथ से नीचे गिर पडी और राजा ने महारानी को जगाया। युवक भी उठा। रानी ने कहा—'वेटा! अपने पिता के चरण छुओ।' राजा आश्चर्य चकित देखता रहा। रानी ने रहस्य खोलते हुए वताया—'महाराज! यही है अपना राजकुमार। इसे वचपन मे ही एक दासी चुराकर ले गई थी। वर्षों वाद हमारे अनुचर इसे ढूँढकर लाने में सफल हुए है।'

महाराज ने दूसरे ही दिन श्लोक के रचयिता का पता लगाया। दो-तीन दिन वाद नौकरो ने सूचना दी—'महाराज! इस श्लोक के रचयिता का पता तो चल गया,

पर वे राज दरबार में आने को तैयार नही है ।'

दूसरे दिन राजा स्वय तीन लाख स्वर्णमुद्राएं लेकर भारवि की कुटिया पर पहुँचे । सम्मान पूर्वक स्वर्णमुद्राएं चरणो में रखते हुए कहा—'आपके इस श्लोक ने ही मेरे राज्य के एकमात्र उत्तराधिकारी एव प्रिय रानी की हत्या होते-होते बचाई है ।' राजा ने कविवर भारवि को 'महाकवि' की उपाधि से विभूषित कर राज सम्मान दिया ।

७

सुख स्वप्न

इस सृष्टि का सवसे सुन्दर सुनहरा दिन वह होगा जब मनुष्य का मन नई करवट लेगा, पर-दु खानुभूति के स्पर्श से उसका हृदय उसी प्रकार उद्वेलित होगा, जैसा स्वय के दु ख स्पर्श मे होता है। वह अपने सुख-स्वप्नो का मूल्याकन करना सीखेगा—दूसरो के दु ख-आघातो के साथ।

भगवान महावीर ने कहा है—"आय तुले पयासु"—पर पीडा को अपनी पीडा से तोलो। अपने दु ख की तराजू में दूसरो का दुख रख कर तोलो, तभी तुम सुख-दु ख की सच्ची पहचान कर सकोगे।"

पर, होता है इससे उलटा। इन्सान का मन भीतर मे मोम है, वाहर मे पत्थर। उसे अपनी लगी—लगी सूझती है, दूसरो की लगी दिल्लगी! उसे परवाह नही कि उसके व्यवहार और विचार से किसको कैसी चोट पहुँचेगी? दूसरा कोई उसकी चोट से कराहता है तो वह उसे

कायर कहकर घूरने लगता है, किंतु हमदर्दी की हिलोर उसके हृदय मे नही उठती।

मानव स्वभाव की इस विडम्बना पर व्यग्य करने वाली प्रसिद्ध विचारक खलील जिब्रान की एक कहानी मुझे याद आगई है—

पतझड में पेड के पत्ते चर्-चर् करते हुए गिरते जा रहे थे। उनके शोर से उद्विग्न होकर घास के तिनके ने कहा—"ए मूर्खो ! गिरना है, तो गिर पडो, कही अपना सिर छुपाकर बैठ जाओ ! शोर क्यो मचा रहे हो ! तुम्हारे शोर से मेरे सुख-स्वप्न में बाधा पहुच रही है।"

एक पत्ता क्रोधित होकर बोला—"नीच कही का ! अधोगति को प्राप्त, गान विद्या से विहीन, चिड चिडे तिनके ! तेरी यह हिम्मत ! तू क्या जाने राग की लय में क्या आनन्द है, क्या मस्ती है ? हमारे संगीत से तुझे वेदना होती है ? ईर्ष्यालु !"

आंधी और वर्षा ने पत्ते को भूमि की गोद में सुलादिया। फिर बहार का मौसम आया, उसकी आँख खुली, पर अब वह पत्ता घास का तिनका बन चुका था।

फिर पतझड का मौसम आया। पत्ते गिरने लगे। उनके शोर से जाडे की मीठी नीद में सोये घास के तिनके की निद्रा टूट गई। वह क्रोध में बडबडाया—'ये पतझड के पत्ते कैसे दुष्ट है, किसी का सुख सहा नही जाता

इनसे। मेरे मधुर-शिशिर-स्वप्नो को भग करदिया इन कम्बख्तो ने !"

तभी विचारक ने कहा—एक दिन तू भी पत्ता था और तब घास ने तिनके को तूने जो कठोर उत्तर दिया क्या वह भूल गया ?

अपने दुःख से जरा दूसरो के दुःख की तुलना करके तो देख !

८

कारूं का खजाना

●

भगवान माहवीर का एक वोध वचन है—वित्तेण ताणं न लभे पमत्ते*—हे प्रमाद मे भूले मनुष्यो ! यह धन कभी भी तुम्हारी रक्षा नही कर सकेगा ।

जिस धन को मनुष्य प्राण से भी अधिक समझ बैठा है, वह प्राण निकलते समय निष्प्राण-सा देखता ही रह जाता है । मनुष्य मरता है, धन उसकी तिजोरी मे बन्द पड़ा रहता है, वह एक चरण भी उसके साथ नही चलता ! पत्नी घर के दरवाजे तक पहुँचा कर रह जाती है और वाल-बच्चे श्मशान घाट तक ! आगे साथ क्या जाता है ? सिर्फ एक धर्म ! सुकृत ! पुण्य !

जो धर्म को छोडकर धन जमा करने में रहा—वह मरते समय दरिद्र की तरह घर से निकलता है ।

शेखसादी ने 'गुलिस्ताँ' में एक जगह लिखा है—'उस शख्स के जनाजे की नमाज मत पढो, जिसने अल्लाह की

* उत्तराध्ययन सूत्र ४ ।

याद भुलादी और माल जमा करने की फिक्र मे सारी उम्र बितादी।'*

एक बुद्धिमान से किसी ने पूछा—इस ससार मे भाग्य-शाली कौन है?

विद्वान ने जवाब दिया—जिसने खाया (स्वय उपयोग किया) और बोया (परलोक के लिए सुकृत का बीज बोया) वह भाग्यशाली है। और जो मर गया और छोड गया, वह दरिद्र (बदनसीब) है।

कहते है ईरान मे एक सम्राट हो गया है—कारू।† उसके पास अपार सपत्ति थी। उसके भडारो की तो गणना ही क्या, भडारो की कुजिया ही चालीस ऊँटो पर चलती थी। हजरत मूसा ने उसे एक बार उपदेश दिया था—"जिस तरह अल्लाह ने तुझ पर महरबानी की है, उसी तरह तू भी लोगो पर महरबानी कर। बादशाह कारू ने इस उपदेश पर चुटकिया बजाकर मजाक किया।

जब कारू मरने लगा तो उसने सपूर्ण खजाना अपनी छाती पर रखने का आदेश दिया। जैसे ही खजाना उसकी छाती पर रखा गया, वह भूमि मे समागया।

---

* गुलिस्ता भाग ८।२।

† आज भी किसी के पास अपार संपत्ति होती है तो उसके लिए 'कारू का खजाना' कहावत चलती है।

९

कपड़े बदल गये

●

हजारो वर्ष पहले धर्मराज युधिष्ठिर ने कहा था—

"धर्मस्य तत्वं निहितं गुहायां"

—महाभारत

धर्म का तत्त्व गुफा मे छिपा रहता है।

आज की परिस्थितियो मे यह वात सत्य अनुभव हो रही है। आज धर्म के नाम पर अधर्म की पूजा हो रही है, सत्य के नाम पर असत्य की जय जयकार से आकाश-पाताल गूंज रहे है। करुणा और सरलता के नाम पर धूर्तता के आडम्बर पूर्ण अभिनय पर ससार मुग्ध हो रहा है। और इतना ही नही, अधर्म अपनी झूठी करतूतो से धर्म को तिरस्कृत कर रहा है। असत्य अपनी चकाचोध से सत्य को निस्तेज बनाने का प्रयत्न कर रहा है—और मनुष्य को आँखो पर पर्दा गिर रहा है कि वह इनके अलग-अलग रूपो और मुखौटो की सचाई को जान भी नही पा रहा है। इन स्थितियो पर विचार करते हुए एक

पौराणिक कथा याद आजाती है।

एक वार दो सहेलिया नदी के शात तट पर घूम रही थी। सहसा उन्हे दो और सहेलिया मिली जो फटे हुए कपडे पहने विपद्ग्रस्त-सी कही से आ रही थी। सहेलियो ने उन्हे भद्र महिला समझकर अभिवादन किया। अभिवादन के वाद परिचय हुआ। उन दोनो ने अपना-अपना नाम वताया—"मेरा नाम है—राजकुमारी धूर्तता।" और मेरा नाम है—"कुमारी क्रूरता।" और आपका नाम क्या है बहन जी!—दोनो ने पूछा।

मेरा छोटा सा नाम है—"दया!" और मेरा भी एक सीधा सादा नाम है—सरलता।"—उत्तर दिया दोनो सहेलियो ने।

वातो ही वातो मे चारो मे स्नेह और मैत्री वढ गई। धूर्तता ने कहा—"आओ! देखो, नदी का शांत जल मोती-सा निर्मल और वर्फ-सा शीतल है। इसकी लहरो में अपूर्व उत्साह भरा है, हम चारो नदी मे नहाए।"

चारो सहेलियो ने अपने-अपने कपडे किनारे पर उतार दिये और नदी मे डुबकिया लगाने लगी।

धूर्तता ने आँखे मटकाकर क्रूरता को इशारा किया और झटपट दोनो नदी से बाहर निकली। क्रूरता ने दया के सुन्दर रेशमी कपडे पहन लिए और धूर्तता ने सरलता का स्वच्छ सादा परिधान अपने शरीर पर डाला और वहाँ से नौ दो ग्यारह होगई।

दया और सरलता भी बाहर आई। उन दोनो को पुकारने लगी "अपने कपडे पहन कर जाइए।" पर वे लौटी नही। विवश हो दया और सरलता ने उन दोनो के फटे कपड़ो से ही अपना शरीर ढक कर लाज बचाई।

क्रूरता और धूर्तता तब से आजतक दया और सरलता का परिवेष पहने संसार को छल रही है। साधारण मनुष्य ही क्या, विद्वान् भी उनसे धोखा खा रहे है।

१०

एक चित्र : तीन परछाई

धर्म और शास्त्र की चर्चाओ मे विजय दुदुभि वजाने वाले आचार्य शकर ने एक दिन अपने अनुभव की वात कही थी—

शब्दजालं महारण्यं चित्तभ्रमण-कारणम्

—विवेक चूडामणि ६२

ये वडे-वडे उपदेश और लम्वी तत्वचर्चाए सिर्फ शब्द जाल है, उसमे मनुष्य की बुद्धि की चिडिया फँस जाती है तों निकलना भी मुश्किल हो जाता है।

वास्तव मे पोथी का धर्म, जव तक जीवन का धर्म नही वनता तव तक वह शब्द जाल ही है। सुन्दर से सुन्दर काव्य लिखने वाला कवि, वैराग्य का उपदेश वघारने वाला वैरागी और जोशीला भाषण सुनाने वाला नेता जव तक उन भावो को, उपदेशो और आदर्शो को अपने जीवन मे नही उतारते, तो उनके वे काव्य, प्रवचन, और भाषण शब्द जाल के सिवा और क्या हो सकते है?

एक कवि ने एक गीत लिखा, जिसका भाव था 'मेरी प्रेयसि ! मैं तुम्हारी मिट्टी की देह को नही किन्तु आत्मा की अनन्त सुन्दरता को प्यार करता हूँ।'

उस गीत को पढकर एक प्रणयाकुल कुरूप महिला उसके निकट आई, और बोली—'मैं तुम से असीम प्यार करती हूँ। तुम मेरे रूप को नही, किन्तु हृदय के सच्चे प्यार को परखो, क्योकि तुम ने अपने गीत मे आत्मा की सुन्दरता मे प्यार करने की बात कही है, मुझे विश्वास है, तुम उसके अनुसार मेरे हृदय के पवित्र प्यार को समझोगे।'

कवि ने घृणा से उसकी ओर देखा और मुह फेर कर कहा—'वह तो मेरी कविता की बात है।'

नारी ने तिरस्कार के साथ कहा—'ओ शब्दजाल फैलाने वाले पाखडी ! समझी, तुम काव्य में कुछ और हो, वास्तव मे कुछ और ।'

* *

एक महात्मा जी ने विशाल भीड को सम्बोधित करते हुए कहा—'इस जीवन का सार है सेवा ! दान ! करुणा ! जो कुछ अपने पास है, गरीबो की सेवा मे लुटा दो। स्वय भूखे रहकर भी अपनी रोटी गरीबो को दे डालो ! जो नर की सेवा करता है, वही नारायण की सेवा करता है।'

उपदेश खत्म होने के बाद भीड बिखर गई। एक बुढा सर्दी से ठिठुरता हुआ उपदेशक के सामने आया—

महाराज ! धन्य है आपका उपदेश ! कड़ाके की सर्दी पड़ रही है और मेरे पास तन ढकने को एक वस्त्र का चिथड़ा भी नही है। आपके शरीर पर इतने गर्म कपडे है, दो-दो कम्बल है, एक मुझे मिल जाये तो महाराज ! जान बच जाए ।'

'है ! है हटो ! हमने उपदेश दिया तो हमारे ही गले पड गये ! हमने सेवा और दान की प्रेरणा दे दी अब किसी दानी से माँगो... । हटो !'

बुड्ढे ने सर्दी से काँपते हुए घूर कर देखा—'समझा ! तुम सेवा करने वाले नही, सेवा का उपदेश करने वाले हो, सेवा करना तुम्हारा काम नही है ।'

* *

एक नेता ने श्रमदान यज्ञ का उद्घाटन किया—जनता को हाथ से श्रम करने की महत्ता और गौरव समझाते हुए कहा—'हमे हाथ से काम करने मे गौरव का अनुभव होना चाहिए, जो श्रम से जी चुराता है, वह चोर है, देशद्रोही है !'

भाषण समाप्त कर नेताजी आगे निकल गये । कुछ मजदूर वहाँ से मिट्टी खोदकर सर पर उठा-उठाकर ले जा रहे थे । आखिर मे एक मजदूर बचा, भरी हुई टोकरी उससे उठ नही रही थी, कोई उठवाने वाला नही था, तभी नेताजी उधर से निकले ।

मजदूर अभी श्रमदान मे उनका जोशीला भाषण

सुनकर आया था। उसने जरा हाथो का सकेत करके कहा—'भाऊ साहब ! जरा इस टोकरी को सिर पर उठवा दीजिए।'

नेताजी ने आँखे तरैरकर उसकी ओर देखा—'है ? क्या बक रहा है'' मिट्टी की टोकरी उठवाने को मैं ही दीखा ''सफेद खादी के उजले कपडे मैले हो जायेंगे · मुझे अगली सभा मे भाषण देने जाना है' 'और यो घूरते हुए चले गए जैसे भेड़िया मेमने पर घूर रहा हो।

मजदूर दात किट किटाकर रह गया—'श्रम से जी चुराने वाला चोर होता है, तो तुम क्या हो, ढोंगी !!'

११

पृथ्वी गोल है ?

•

कभी-कभी सोचता हूँ, भौगोलिक दृष्टि से पृथ्वी, गोल है या चपटी, यह आज एक विवाद का विषय है। किंतु मनुष्य की मानसिक पृथ्वी गोल है—यह निर्विवाद सत्य है। मनुष्य के अन्तर्जगत में आज परिवर्तन की जो गति चल रही है, वह करीब-करीब उसकी मूलस्थिति को बदल चुकी है। जो धार्मिक, निस्पृहता, सत्यनिष्ठा और अध्यात्म एव योग के पथ पर सीधे चलते थे, वे आज अधर्म, असत्य, भोग, और नास्तिकता की धुरी पर उलटे चलने लग गये है।

जिन्हे अधार्मिक, भौतिकवादी, अनार्य और असभ्य माना जाता था, वे आज धर्म की अधिक कदर करते है, योग और अध्यात्म में रुचि ले रहे है सत्य, ईमानदारी और सभ्यता की दौड मे आगे बढ रहे हैं।

लगता है—पूरव पश्चिम को जा रहा, और पश्चिम

पूरब की ओर बढा आ रहा है। भोग-थक कर योग की
छाया में आ रहा है। योग–अपनी ऊब मिटाने भोग की
धूप में अगडाई भर रहा है।

एक कहानी है। अफकार नामक एक प्राचीन नगर में
दो विद्वान रहते थे। दोनो एक दूसरे के प्रतिद्वन्द्वी थे, एक
दूसरे के विचारो की मजाक उडाते थे। उनमे एक
आस्तिक था, ईश्वर में विश्वास करता था और दूसरा
नास्तिक—ईश्वर की सत्ता पर व्यग कसता रहता था।

एक बार नगर के लोगो ने मिलकर उन दोनो की
बहस करवाई, ईश्वर के अस्तित्व पर घटो तक
तर्क-वितर्क होते रहे। दोनो की ही दलीले बडी
वजनदार थी।

उसी शाम को नास्तिक भगवान के मदिर मे गया
अपना सिर झुकाकर पिछले पापो का पश्चात्ताप करने
लगा–"प्रभो! तुम्हारे अस्तित्व के इतने अकाट्य प्रमाण
होते हुए भी मैंने उन्हे झुठलाया, तुम्हारी निन्दा की! मुझे
क्षमा कर देना!"

और उसी शाम को, आस्तिक विद्वान भी अपने घर
पहुँचा। वह अपनी भूलो पर झुझला रहा था—'किसी भी
तर्क से, प्रमाण से ईश्वर का अस्तित्व सिद्ध नही है। मैं
व्यर्थ ही लोगो को छलता रहा हूँ, ये सब पुस्तके, धर्मग्रन्थ
झूठे है।'—बस उसने अपनी पुस्तके एकत्र की और फूंक
डाली।

नास्तिक आस्तिक की गद्दी पर पहुँच गया और आस्तिक नास्तिक की दिशा मे चल पडा। क्या सचमुच मानव की मानसिक पृथ्वी गोल नही है? आज के तथा-कथित धार्मिको की भी यही स्थिति नही है?

१२

चीनी की पुड़िया

●

संस्कृत के पद्मानंद महाकाव्य में एक सूक्ति है—

"भुजंगमानां गरलप्रसंगान्नापेयतां यांति महासरांसि"

महासरोवर में अजगर और विशालकाय साप निरन्तर जहर उगलते रहते है, फिर भी सरोवर का पानी उनसे कभी दूषित नही हो सकता। इसी प्रकार सत्पुरुष का जीवन जो कि सद्‌गुणो की साधना में महासरोवर की भाँति विशाल बन गया है, निन्दक व दुष्टजनो के निंदा-प्रवादों से कभी लांछित नही हो सकता।

निदक का स्वभाव ही निंदाप्रिय होता है, उसकी जीभ को विष वमन करने की आदत हो जाती है। किंतु गुणी जन उस पर क्रोध नही करते। उनका तो आदर्श होता है—

वुच्चमाणो न संजले

—सूत्र कृतांग १।६।३१

अर्थात् क्रोध युक्त दुर्वचन कहने वाले पर भी क्रोध

नही करना। किंतु उस क्रोध को क्षमा से शात कर देना। वे उस आग को पानी से बुझा डालते है। अविवेक को विवेक से विजय कर लेते है।

सिरीया के प्रसिद्ध विचारक खलील जिब्रान की एक कहानी है। किसी ममय 'बुखारा' नगर मे एक अत्यत दयालु और सद्गुणी राजकुमार था। उसकी उदारता की दूर-दूर तक ख्याति थी। प्रजा उससे बहुत प्यार करती थी।

उस नगर मे एक दरिद्र व्यक्ति रहता था। जो फटे हाल होकर भी राजकुमार की बहुत निदा करता था। वह रात दिन राजकुमार के सम्बन्ध मे जहर उगलता रहता।

राजकुमार उस दरिद्र निदक की बाते सुनता, पर वह कभी क्रुद्ध नही हुआ। उलटा उसके प्रति राजकुमार के मन मे दया का भाव जगता।

एक वार शरद्पूर्णिमा के दिन राजकुमार का जन्म-दिवस मनाया जा रहा था। नगर मे चारो ओर चहल-पहल, खुशियाँ थी। राजकुमार ने एक सेवक के हाथ निन्दक के घर पर तीन उपहार भेजे—'एक आटे की बोरी, एक साबुन की थैली और एक पुडिया चीनी की।' सेवक ने निन्दक को ये उपहार देते हुए कहा—'राजकुमार ने अपने जन्मदिवस के उपलक्ष्य मे आपको यह भेट भेजी है, क्योकि आप उनको हमेशा याद करते रहते है।'

निन्दक का सीना गर्व से फूल उठा—क्योंकि उसने विचार किया—'राजकुमार सचमुच मेरा आदर करता है, इसीलिए तो उसने यह उपहार भेजा है।' अहकार के नशे में छका हुआ वह लोगो को बताने लगा—'देखो, राजकुमार भी मेरे साथ स्नेह सपर्क बढाना चाहता है, वह मेरा कितना आदर करता है, उसने मुझे अपने जन्म दिन पर उपहार भेजा है।'

निन्दक की शेखी भरी बाते एक पादरी ने सुनी। उसने कहा—'मूर्ख! राजकुमार बहुत चतुर है। उसने तेरा सम्मान करने के लिए नही, किन्तु तेरी आदते सुधारने के लिए ये तीन वस्तुए भेजी है। इनका मतलब कुछ समझा है?'

निन्दक पादरी की ओर देखकर चुप रहा। वहाँ काफी भीड जमा हो गई। पादरी ने बताया—'यह आटा है तेरा खाली पेट भरने के लिए, क्योंकि भूखा आदमी ज्यादा शोर करता है। यह साबुन है तेरे गदे शरीर को साफ करने के लिए, चूकि निन्दा करते-करते तुझे नहाने की भी फुर्सत नही मिलती और तेरे शरीर में बदबू आ रही है। यह चीनी की पुडिया है तेरी कड़वी जबान को मीठा करने के लिए।'

कहते है उस दिन से वह निन्दक राजकुमार का प्रशसक बन गया।

१३

प्रस्तुतीकरण

अनुभुति और सवेदना—हर किसी के पास होती है, पर हर कोई कवि और लेखक नही बन सकता। विचार और भाव सभी के पास होते है, किंतु वक्ता सब नही बन सकते। जिसके पास अनुभूति को प्रस्तुत करने की कला होती है, भावो को अभिव्यक्ति देने का चातुर्य होता है, वह छोटी-सी वस्तु को भी महत्वपूर्ण रूप प्रदान कर सकता है।

एक कलाकार किसी पहाडी प्रदेश मे भ्रमण कर रहा था। आदिवासी लोगो के बीच घूमते हुए उसने एक घर के सामने एक विशाल प्रतिमा औंधी पड़ी हुई देखी। वह किसी प्राचीन कलाकार की प्रतिमा थी, पर वहाँ के लोग उसे एक बेडोल पत्थर के सिवाय कुछ नही समझते थे।

कलाकारने उस घर मालिक से कहा—'आप यह पत्थर हमे बेच दीजिए।' घर मालिक ने कहा—''इस पत्थर का भी कोई मूल्य है, ले जाओ। यहाँ तो बहुत पत्थर पडे है।''

कलाकार ने उसे एक चाँदी का सिक्का दिया और उस प्रतिमा को एक हाथी पर लाद कर नगर मे पहुँचाया गया ।

एकदिन वह पहाड़ी आदमी उस नगर मे किसी काम से आया। बाजार में घूमते हुए उसने एक दुकान के सामने बहुत-सी भीड़ जमा देखी। एक आदमी जोर-जोर से पुकार रहा था—"आइए ! संसार के एक महान् कलाकार की प्राचीनतम प्रतिमा देखिए ! इतिहास और कला का श्रेष्ठ नमूना है। प्रवेश शुल्क सिर्फ दो रुपया !"

पहाडी आदमी दो रुपए देकर प्रतिमा देखने भीतर गया तो वह देख कर दंग रह गया—यह तो वही प्रतिमा है जिसे एक रुपये मे बेची थी ! और अब उसे देखने मात्र के दो रुपये !

यह है प्रस्तुतीकरण की कला, जिसने आज विज्ञापन बाजी का रूप ले लिया है। किंतु इसका सदुपयोग भी किया जा सकता है ..

१४

राजा के तीन गुण

ईरान के महान् नीतिज्ञ शेखसादी से किसी ने पूछा-"राजा मे कौन-कौन से गुण होने चाहिए ?"

सादी ने उत्तर मे एक कहानी सुनाई—बहुत पहले की वात है अजम (ईरान—तूरान-ईराक क्षेत्र) मे एक बादशाह हुआ। वह बडा अन्यायी था। प्रजा पर जबर्दस्ती आरोप लगाकर उसका धन-माल छीन लेता और उन पर जोर-जुल्म करता। बादशाह के अत्याचारो से पीडित होकर जनता वहाँ से भागने लगी और देश-छोड़-छोडकर दूसरे देशो मे जा बसी।

एक वार बादशाह सभा में बैठा महाकवि फिरदौसी का प्रसिद्ध काव्य ग्रंथ शाहनामा सुन रहा था। उसमें ईरान के न्यायी सम्राट फिरदू की दिग्विजय का वर्णन आया। तब वजीर ने बादशाह से पूछा—"महाराज ! फिरदू के पास न तो धन था, न कोई बडा देश था, न कोई खास फौज थी, फिर उसने इतने वडे-बडे देशो पर

विजय कैसे प्राप्त की और कैसे उन्हे अपनी हुकूमत मे रख सका।"

बादशाह ने वताया–"उसके पास जनता की ताकत थी, जहाँ भी गया, वहाँ की जनता ने उसे प्रेम किया, विश्वास दिया और हर तरह से उसका साथ दिया, बस इसी कारण वह बिना हथियार व फौज के देश-पर देश जीतता चला गया।"

बजीर ने बादशाह की ओर देखा–"हजूर! जव आप यह जानते है कि लोगो को साथ रखने से ही हुकूमत चल सकती है तो आप अपनी प्रजा को भगाते क्यो है? आप भी प्रजा को प्रेम क्यो नही देते? क्यो नही उसे राजी रखते?"

बादशाह ने बजीर की ओर गभीरता से देखा और पूछा—'तुम्ही बताओ, प्रजा को राजी रखने के लिए बादशाह को क्या करना चाहिए?"

बजीर ने जबाब दिया—प्रजा को राजी रखने के लिए बादशाह मे तीन बाते होनी चाहिए—

१ उदारता
२. दयालुता
३. न्यायप्रियता

यदि बादशाह मे ये तीन बाते होती है तो प्रजा भी वदले में उसे तीन बाते देती है—

१ बादशाह के खजाने को भरती हैं

२. बादशाह के लिए अपने प्राण देती है

३ बादशाह के लिए हमेशा शुभ कामनाए करती है।

प्रश्नकर्ता ने समाधान के साथ सादी का अभिवादन किया।
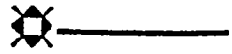
१५

सोना या जागना ?

●

लगभग पच्चीस-सौ वर्ष पूर्व की घटना है। भगवान महावीर एक बार कौशाम्बी मे पधारे। कौशाम्बी नरेश उदयन की बुआ तत्त्वज्ञा जयती ने भगवान से—एक विचित्र प्रश्न किया —"भते ! सोना अच्छा है, या जागना ?"

प्रश्न का समाधान देते हुए प्रभु महावीर ने कहा—

अत्थेगइयाणं जीवाणं सुत्तत्तं साहू
अत्थेगइयाणं जीवाणं जागरियत्तं साहू

—भगवती सूत्र १२।२

कुछ प्राणियो का (जो कि अधार्मिक है) सोते रहना अच्छा है, और कुछ प्राणियो का (जो धार्मिक है) जागते रहना अच्छा है।

इसी उत्तर के प्रकाश में अब देखिए सातसौ वर्ष पूर्व के ईरानी तत्त्ववेत्ता सादी का एक अपना सस्मरण—उसने लिखा है—मैंने एक अन्यायी और जोर जुल्म

करने वाले इन्सान को दिन मे खर्राटे भरकर सोते देखा तो मैंने खुश होकर कहा—इसका सोना जागने से वेहतर है, न सिर्फ इसके लिए ही, किंतु दूसरो के लिए भी।"

लोगो ने आश्चर्य पूर्वक मुझे घूरकर देखा और पूछा-"ऐसा आप किसलिए कहते है ?"

मैंने उत्तर मे एक कहानी सुनाई—एक अन्यायी वादशाह ने एक धर्मात्मा फकीर से पूछा—"मेरे लिए सवसे अच्छी प्रार्थना (इवादत) कौन सी रहेगी जिससे मुझे ज्यादा से ज्यादा शाति मिले।"

फकीर ने जवाव दिया—"तुम दोपहर के वक्त ज्यादा से ज्यादा सोया करो। यही तुम्हारे लिए सवसे अच्छी प्रार्थना होगी।"

वादशाह ने आश्चर्य के साथ पूछा—'ऐसा क्यो कह रहे हैं आप ?'

फकीर बोला—"इसलिए कि तुम जितनी देर सोते रहोगे उतनी देर लोग तुम्हारे जुल्म से वचे रहेगे, और तव तुम्हे कुछ-कुछ शाति जरूर मिलेगी।"

जव अधार्मिको का सोते रहना अच्छा है, तो धार्मिको का जागते रहना स्वयं ही श्रेष्ठ सिद्ध होगया। उन्ही धार्मिक वृत्ति पुरुषो को जागरण का आह्वान करते हुए एक आचार्य ने कहा है—

जागरह ! णरा णिच्चं
जागरमाणस्स वड्ढते बुद्धी

मनुष्यो ! जागते रहो, जागने वालो की बुद्धि भी जागती रहती है, और विकास करती जाती है। मगर कब ' ? जब जागने का उद्द ेश्य पवित्र व धर्म मय हो।" इसीलिए कहा है—धर्मात्मा का जागना अच्छा है, और पापात्मा का सोना !

१६

पाप पलट कर आता है

●

तथागत बुद्ध ने एक वार एक राजपरिषद् को संबोधित करके कहा था—

अदुट्ठस्स हि यो दुब्भे पाप कम्मं अकुब्बतो ,
तमेवं पापं फुसति दुट्ठचित्तं अनादरं ।

—इति वुत्तक ३।४०

जो राजा या अधिकारी किसी निर्दोष व्यक्ति को दोषी बताकर दण्डित करता है, तो उसका वह पाप कर्म पलटकर उसी दुष्ट चित्त वाले व्यक्ति को पकडकर खत्म कर डालता है।

वास्तव मे दूसरे के लिए खड्डा खोदने वाला स्वय भी उस खड्डे मे जा गिरता है। एक प्रसिद्ध कहावत है—

खाड खरणै जो और को ताहि कूप तैयार !

इसी बात को स्पष्ट करने वाला एक ऐतिहासिक उदाहरण है। फारस देश मे उमरूलैस नामक एक बादशाह हो गया है जिसने प्रसिद्ध नगर शीराज का निर्माण

किया था। एक बार बादशाह का एक गुलाम भाग गया। उसे पकडने के लिए सिपाही भेजे गए और गुलाम को पकड लिया गया।

राज्य का वजीर गुलाम से नाराज था, उसने यह अवसर देखा बदला लेने का। बादशाह से कहा—'जहाँ-पनाह ! इस दुष्ट को मार डालना चाहिए ताकि दूसरे गुलाम डरते रहे, और कोई फिर ऐसी शरारत करने की कभी हिम्मत न करे।'

गुलाम ने बजीर की सलाह सुनी। वह चतुर था। उसने बादशाह से प्रार्थना की—'आप जो भी हुक्म देगे, वही इन्साफ होगा। मालिक की मर्जी के सामने गुलाम का कोई चारा भी नही। किन्तु मैंने आपका नमक खाया है, इसलिए आपकी भलाई के लिए एक प्रार्थना करने का अधिकार मानता हू। मै निरपराध हू, निरपराध के खून का पाप आपके सिर पडे और आगे भगवान के सामने स्वयं आपको इसका दण्ड भुगतना पडे—यह ठीक नही होगा, इसलिए मुझे भले ही मार डालिए, किन्तु पहले मुझे दोषी बनाकर, ताकि निर्दोष व्यक्ति की हत्या का पाप आपके सिर पर न पडे।'

बादशाह को गुलाम की बात पसद आई। बोला—'फिर तू ही बता, कैसे करना चाहिए ?'

गुलाम ने जबाब दिया—'मुझे आज्ञा दीजिए कि पहले मैं बजीर को मार डालूँ, और फिर इस अपराध के लिए आप मुझे मरवा डालिए। ताकि आपका यह कार्य ससार

में और भगवान के दरवार मे भी न्याय कहला सके।'

वादशाह ने हँसकर वजीर की ओर देखा—'गुलाम कहता तो ठीक है, कहिए आपकी क्या राय है?'

वजीर घवराकर वोला—'जहापनाह! यह गुलाम विचारा खानदानी सेवक है, इसे छोड़ दीजिए' इसकी कोई गलती नही, गलती मेरी है कि मै नीतिकारो के इस उपदेश को भूल गया—'तुम किसी पर ढेला फेकते हो, तो उसकी गोली का निशान वनने से वच नही सकते।' जो दूसरो का बुरा सोचता है, खुद उसका भी बुरा होता है।

१७

अब तेरी परीक्षा

मनुष्य हिसा एव अन्याय क्यो करता है ?

इसका मनोवैज्ञानिक विश्लेषरण करते हुए भगवान महावीर ने कहा है—

> जे पमत्ते गुणाठ्ठिए से हु दडे त्ति पवुच्चति
>
> —आचाराग १।१।४

जो प्रमत्त और विषयासक्त होता है, वही दूसरो को —हिसा, पीडा एव अन्याय के द्वारा दडित करता है।

अपने प्राणो का, अपने पुत्र-परिवार एवं सुख-सुविधाओ का जो मूल्य मनुष्य की दृष्टि में है, यदि वह दूसरो के प्राण आदि का भी वही मूल्य समझले तो फिर ससार से हिसा एव अन्याय नामक तत्व ही समाप्त न हो जाय ?

एक फारसी विद्वान का कथन है—कि तुम्हारे पैर के नीचे दवी चीटी का हाल समझना हो तो कल्पना करो कि एक हाथी के पैर के नीचे दबने पर तुम्हारा क्या हाल हो

सकता है ? दूसरे के दुःख को अपने दुःख से समझो।"

पर कहा समझा है अब तक उसने ? अपने थोडे से स्वार्थ के लिए–राजा अपनी प्रजा को मौत के घाट उतार सकता है, माता–पिता संतान को बेच सकते है, और न्याय एवं नियम की पोथिया भी बदली जा सकती है। देखिए एक प्राचीन उदाहरण—

एक बार एक सम्राट को कोई भयंकर रोग हुआ। चिकित्सा करते-करते वह थक गया, पर रोग नही मिटा। किसी हकीम ने सम्राट को बताया कि "अमुक खास लक्षण वाले आदमी का जिगर (यकृत) मिल जाये तो आपका रोग दूर हो सकता है।"

उस आदमी की खोज शुरू हुई। देश के चप्पे-चप्पे को छाना गया। आखिर एक गाँव मे एक गरीब लडका मिला जिसमे ये सब लक्षण थे। सम्राट ने उस लडके के माता-पिता को बुलाया और कहा–"इस लडके के बराबर सोना तोलकर ले लो, लडका हमें दे दो।" लोभी माता-पिता ने सोने के साथ लड़के का सौदा कर लिया।

इसके बाद राज्य के न्यायाधीश ने भी राज सभा में अपना निर्णय दिया कि–एक सम्राट् की जीवन रक्षा के लिए किसी एक व्यक्ति को मार डालना कोई अपराध नही है, न्याय की दृष्टि से भी यह उचित ही है।

अब उस लडके को वध के लिए सम्राट के सामने

खडा किया गया, और जल्लाद हाथ में चमचमाता खंजर लेकर उसका कलेजा निकालने तैयार हुआ। तभी वह असहाय लडका आकाश की ओर देखकर बड़ी जोर से हँसा।

सम्राट ने चकित होकर पूछा—"मौत को सामने देखकर लोग रोते, सिर पीटते है, तू ऐसे समय मे भी हँस रहा है, ऐसी क्या बात है ?

लडके ने कहा—'जो माता-पिता अपने पुत्र के लिए सब कुछ निछावर करने को तैयार रहते है, वे भी सोने के लालच मे आकर पुत्र की बलि देने तैयार होगए। जो न्यायाधीश न्याय के सिंहासन पर बैठकर न्याय करने की शपथ खाता है, वह भी कुछ चाँदी के टुकडो के लिए एक निर्दोष की हत्या का समर्थन करने लग गया और जो सम्राट प्रजा को संतान की तरह पालने के लिए सिंहासन पर बैठता है वह सिर्फ अपनी बीमारी मिटाने के लिए मेरा कलेजा खाना चाहता है तो एसे समय में उस भगवान की ओर देख रहा हू–कि हे भगवान ! ये तो अपने धर्म से गिर गये है, अब तेरी परीक्षा और है कि तू क्या करता है ?'

लडके की बातें सम्राट के हृदय में चुभ गई। उसकी आँखे भर आई। लडके का सिर चूमते हुए उसने कहा—'अपने शरीर के लिए किसी निर्दोष की हत्या करने की

अपेक्षा मेरा मर जाना ही ठीक है।" उसने लडके को सम्मान और प्यार देकर अपने पास रख लिया। और धीरे-धीरे उसका स्वास्थ्य सुधर गया।

वास्तव में दूसरे के दुख को अपने दुख के समान समझना ही सच्ची करुणा है।

१८

स्वर्ग से भी ऊँचा

❁

हजारो वर्ष पहले महाभारत काल के महान् नीति-वेत्ता विदुर ने धृतराष्ट्र से कहा था—

द्वाविमौ पुरुषौ राजन् ! स्वर्गस्योपरि तिष्ठतः ।
प्रभुश्च क्षमयायुक्तो दरिद्रश्च प्रदानवान् !

—महाभारत उद्योगपर्व ३३।५८

'राजन् ! दो प्रकार के पुरुष स्वर्ग के भी ऊपर स्थान पाते है। उनकी महानता अपरिमेय होती है।'

धृतराष्ट्र ने पूछा—'वे कौन से दो पुरुष ?'

विदुर ने कहा—शक्तिशाली होने पर भी क्षमा करने वाला, और निर्धन होने पर भी दान देने वाला।

क्षमा वही कर सकता है, जिसका हृदय उदार और विशाल होता है। एक प्रसिद्ध दोहा है—

क्षमा बडन को होत है, ओछन को उत्पात।
कहा विष्णु को घट गयो, जो भृगु मारी लात।

कहते है ब्रह्मर्षि भृगु एक बार देवताओ मे बडा कौन है, इसकी परीक्षा करते हुए ब्रह्मा, शिव आदि के पास घूम आये। पर उन्हे कही बडप्पन का दर्शन नही हुआ तो वे शेष-शय्याशायी विष्णु के पास पहुँचे। लक्ष्मी जी उनके पास बैठी पाव दबा रही थी। भृगु ऋषि ने पहुँचते ही विष्णु को पाव की ठोकर मार कर उठाया। विष्णु ने ऋषि को सामने खडा देखा तो वे अत्यन्त विनम्रता के साथ उनके चरणो को सहलाते हुए बोले—'भगवन् ! कहो मेरी कठोर देह के स्पर्श से आपके चरण कमलो को कोई कष्ट तो नही पहुँचा ?

भृगु पानी-पानी हो गए। उन्होने उद्घोषणा की—'विष्णु ही सर्व देवो मे श्रेष्ठ है।'

यह हुई देवो की बात। अब मनुष्यो की बात भी सुनिए—बगदाद के खलीफा हारू रशीद अपनी न्याय-परायणता और प्रजावत्सलता के लिए प्रसिद्ध थे। एक बार उनका शाहजादा क्रोध मे आनन फानन हुआ आया, और बोला—'आपके अमुक अफसर ने मुझे माँ की गदी गाली दी है।'

खलीफा ने शाहजादे को सामने बैठाया और वजीरो से पूछा—'बताइए, उस अफसर को इस अपराध की क्या सजा देनी चाहिए ?

किसी ने कहा—उसे जान से मरवा डालिए।

किसी ने कहा—उसकी जीभ खिचवा देनी चाहिए।

किसी ने कहा—उसका धन माल जब्त कर देश से निकाल देना चाहिए।

खलीफा को किसी की बात पसद नही आई। उन्होने अपने शाहजादे से कहा—"प्यारे बेटे! सब से अच्छा तो यह है कि तुम उसको माफ कर दो। क्योकि जो दूसरो के सौ अपराध माफ करता है, भगवान उसके हजार अपराध माफ कर देता है। यदि तुम्हारे में इतना आत्मवल नही है, वदला लेना ही चाहते हो, तो जाओ, तुम भी उसे वही गाली दे सकते हो, जो उसने तुम्हे दी है। किंतु यदि बदले की हद से बाहर चले गए तो उसकी जगह तुम अपराधी हो जाओगे।"

यह है क्षमा का आदर्श। जो एक बादशाह के सिंहासन पर बैठकर भी गाली देने वालो को माफ करने की नसीहत देता है। अधिकार सम्पन्न होकर भी क्षमा की शिक्षा सुनाता है।

१९

नया आश्चर्य

भगवान महावीर ने एकबार अपने प्रिय शिष्य गण-धर गौतम को सबोधित करके कहा—"गौतम ! जैसे घास की नोक पर हिलती हुई ओस की बूद सूर्य की रूपहली किरणो के प्रकाश मे मोती-सी चमकती हुई प्रतीत होती है, पर वह कितनी देर। कुछ ही क्षण बाद तो उसे गिर कर मिट्टी मे मिल जाना है, बस ऐसा ही है यह मनुष्य का नश्वर जीवन।"*

कोई यह सोचे कि—'**नाणागमो मच्चुमुहस्स अत्थि।**'† मुझे मौत अपने मुह मे पकड कर नही ले जायेगी, उसका यह भ्रम ऐसा ही है, जैसा दिन का प्रकाश देखकर कोई सोचे कि अब रात नही आयेगी ?

यह मानव मन का भ्रम, है सबसे बडा अज्ञान है, मोह है, मूढता है, कि वह अपने सामने ससार को मरता हुआ

---

* उत्तरा १०।१

† आचाराग १।४।२

देखकर भी स्वय निश्चित हुआ बैठा है, जैसे उसे मरना ही नही है। धर्मराज युधिष्ठिर ने इसे ही सबसे बडा आश्चर्य कहा है! यक्ष ने जब उनसे पूछा–धर्मराज! कहिए, ससार मे सबसे बडा आश्चर्य क्या है? तो युधिष्ठिर बोले—

अहन्यहनि भूतानि गच्छन्ति यममंदिरम्।
शेषाजीवितुमिच्छन्ति किमाश्चर्यमतः परम्।

ससार प्रतिदिन मर रहा है, एक-से-एक आगे यमराज के द्वार पर पहुच रहे है, किंतु अपने बाप दादो, और मित्र–बधुओ की मृत्यु देखकर भी जो आज जीवित है वह सोचता है कि बस, वे चले गये, मुझे तो सो वर्ष और जीना है–इससे बढकर आश्चर्य और क्या होगा? दूसरो को मरते देखकर भी मनुष्य अपना मरना भूल गया है।

कोई किसी से मरने की बात कहे, तो उत्तर मे वह कह उठता है–'मरे मेरे दुश्मन!'

वह नही सोचता कि 'दुश्मन तो मरेगा, पर क्या तुम नही मरोगे?' ईरान का न्यायी और सदाचारी बादशाह नौशेरवा एक बार दरबार मे बैठा था। एक आदमी ने आकर कहा—'भगवान की कृपा समझिए, आपका अमुक शत्रु मर गया है।'

बादशाह ने एक तीखी नजर उसके चेहरे पर डाली और बोले—'क्या तुमने नही सुना, कि भगवान मे मुझे अमर जीवन प्रदान कर दिया है?'

वह आदमी आश्चर्य विमूढ हुआ बादशाह के मुह को ताकने लगा। 'आपके कथन का आशय क्या है, मैं नही समझ पाया ?' उसने कहा।

बादशाह ने उत्तर दिया—'मुझे अपने शत्रु की मृत्यु से कोई खुशी और आश्चर्य नही है, क्योकि मैं जानता हूँ, खुद मेरा जीवन भी हमेशा के लिए नही है। मेरे कानो मे निरन्तर यह आवाज गूजती रहती है—दूसरे के मरने पर क्या खुशी मनाता है, आखिर तुझे भी एक दिन मरना है, जब मैं अमर नही हूँ, तो शत्रु के मरने पर खुशी कैसी और कैसा रज मित्र के मरने पर ?'

२०

विजय का रहस्य

●

एक चीनी कहावत है- "जब किसी राज्य का शासक सोता है तो प्रजा जागती रहती है।" इसका अभिप्राय है शासक जब प्रजा के सुख-दु ख से बेपरवाह होकर अपने भोग विलास एवं आनन्द मे ही मगन रहता है तब प्रजा दु खो एव अन्यायो से पीडित हो उठती है, उसका सुख-चैन हराम हो जाता है।

महात्मा शेखशादी ने बोस्तॉ मे एक जगह लिखा है- "प्रजा जड की तरह है, राजा वृक्ष की तरह ! वृक्ष का आधार जड है, यदि वृक्ष फला-फूला रहना चाहता है तो उसे जड को हरी-भरी रखना होगा। जड़ सूख गई, कुम्हला गई तो वृक्ष ढह पडेगा।"

इसी भाव को शब्दान्तर के साथ बौद्ध ग्रन्थ जातक मे यूँ लिखा है—'जो व्यक्ति फल वाले विशाल वृक्ष के पके हुए फल तोडता है उसको फल का मधुर रस भी मिलता रहता है, और भविष्य मे फलने वाला बीज भी

नष्ट नही होता, इसी प्रकार जो राजा विशाल वृक्ष के समान राष्ट्र का नीति एव धर्म से प्रशासन करता है, वह राज्य का आनन्द भी लेता है और अपने राज्य को सुरक्षित रखता हुआ उसका विस्तार भी करता जाता है।

—(जातक १८।५२८)

इन्ही विचारो की प्रतिध्वनि गूँज रही है– यूनान के विश्वविजेता सिकन्दर महान् के इस अनुभव मे—

एकवार किसी ने सिकन्दर से पूछा—आपने पश्चिम से पूर्व तक फैले हुए इतने सारे देशो पर मुट्ठी भर सैनिको की सहायता से विजय कैसे प्राप्त करली ? आपसे पहले भी वहुत से वादशाह हो गए है जो सम्पति मे, वल मे, सेना मे हर तरह से आपसे वढचढकर थे मगर उन्होने कभी भी इतनी महान विजय प्राप्त नही की ?"

सिकन्दर महान् मुस्करा कर बोले—"इसमे कोई वडा रहस्य नही है। मैने जव कभी किसी देश को जीता तो अपने तीन सिद्धान्तो का वरावर ध्यान रखा, और उन्ही सिद्धान्तो ने मुझे विजय-पर-विजय का द्वार खोल दिया, विजित प्रजा का प्यार और विश्वास भी दिया।"

वे सिद्धान्त कौन से है ?–प्रश्नकर्ता ने पूछा।

सिकन्दर ने उत्तर दिया–

१. मैने विजित देश की प्रजा पर कभी जुल्म नही किया, हमेशा उसके जान-माल की रक्षा का ध्यान रखा।

२. मैंने विजित देश के शासको के साथ सदा सम्मान पूर्ण व्यवहार किया और उनकी बहादुरी की प्रशंसा की।

३. मैंने विजित प्रजा और शासक-दोनो की सुख-सुविधाओ का, उनके हार्दिक विश्वासो का और उनके जातीय गौरव का ध्यान रखा।

इसलिए मुझे अपने अधीन विजित देशो से कभी कोई खतरा नही हुआ, वहाँ की प्रजा-राजा ने मेरा सहयोग किया। और आगे-से-आगे मेरा रास्ता साफ होता गया !

—गुलिस्ताँ मे उद्धृत कथा से

२१

दिखावे की भक्ति

•

विद्वानो ने कहा है—जो व्यक्ति लोगो को प्रभावित करने के लिए अपने धार्मिक क्रियाकाडो का प्रदर्शन करता है, लोक रजन के लिए तपस्या करता है, वह वैसा ही मूर्ख है—जैसा कोई लोगो को अपनी समृद्धि जताने के लिए ऐरावत हाथी पर लकडियो का भार ढोता है, कूड़ा-कचरा भरता है।

आचार्य भद्रवाहु के शब्दो मे लोक प्रदर्शन करने वाले की तपस्या-ईख के फूल जैसी निरर्थक है—

मन्नामि उच्छुफुल्ल व निफ्फलं तस्स सामन्नं

—दशवै० नि० ३०१

एक बार किसी महात्मा जी के चेले की प्रशसा सुनकर राजा ने उन्हे अपने महलो मे भोजन के लिए निमन्त्रित किया।

राजपुरुषो ने चेला जी के सामने तरह-तरह के स्वा-

ढ़िष्ट और सुगन्धित व्यञ्जनो के थाल लाकर रखे। उसके मुह मे पानी छूट आया। पेट भी पुकारने लगा, किन्तु वे चिडिया की तरह एक-एक दाना चुगने लगे, इस विचार से कि लोग समझे चेला जी बहुत ही अल्पाहारी और सयमी है।

भोजन के बाद चेला जी का उपदेश और भजन हुआ। वे भजन गाते-गाते जमीन पर लुढक पडे—इस विचार से कि लोग समझे, प्रभु भक्ति मे कितने लीन है।

बहुत देर तक भक्ति का नाटक रचने के बाद साय-काल चेला जी वापस अपने आश्रम आगये। गुरु जी प्रतीक्षा में बैठे थे। चेला जी आते ही बोले—'कुछ खाना बचा हो तो जल्दी लाओ, पेट में चूहे दंड पेल रहे है।'

गुरु ने आश्चर्य के साथ पूछा—शिष्य ! तू तो राजा के यहाँ भोजन करने गया था, क्या वहाँ कुछ भी नही खाया ?

चेले ने कहा—खाया क्यो नही, कितु सिर्फ कहने भर को, किसी खास कारण से भूखा ही रहा····।'

गुरु बडे स्पष्टवक्ता और सरल हृदय थे, सिर पर हाथ धरते हुए कहा—'मूर्ख ! वह खास कारण कौन सा भग-वान का सदेश था। इसके सिवा और क्या कारण होगा कि लोग देखे कि चेला कितने सयमी और अल्पाहारी है, जो दो-चार दाने खाते है, और दिन भर प्रभुभक्ति मे लीन

रहते है। किन्तु जैसे वहा के खाने से तेरा पेट नही भरा, याद रख, उसी तरह उस दिखावे की प्रभु भक्ति से भी कोई लाभ नही होने वाला है।'

२२

असली सोना

●

उपनिषद् का एक वाक्य है—

अमृतत्वस्य तु नाशास्ति वित्तेन

—बृहदारण्यक २।४।३

धन से अमरता की आशा नही की जा सकती।

जो धन जड है, नश्वर है, वह हमेशा जडता ही पैदा करता है, नश्वर खेल रचाता रहता है। निर्ग्रन्थ महर्षियो की भाषा में वह–भार है—**सव्वे आभरणा भारा**, और बधन है। धन तिजोरी में पडा रहता है, किंतु उसका भार मनुष्य की छाती पर रहता है। पैसा भले ही बैंक में पडा हो, या जमीन में गडा हो, अथवा आलमारी मे छिपा हो, वह हमेशा मनुष्य को बाँधे रखता है।

धन का भार हलका तभी हो सकता है, जब उस धन की नश्वरता को समझ लिया जाय। वह बंधन तभी छूट सकता है जब उसकी ममता मन से हट जाये और

आत्मा के अनन्त अक्षय धन पर मनुष्य का मन आश्वस्त हो जाये।

धन आने का मद उसे होता है, जो धन की वास्तविकता से अपरिचित है। धन जाने का शोक भी उसे ही होता है, जो उसकी असलियत को नही जानता। वास्तव मे जिसने अपने असली धन को पा लिया, उसे न धन का गर्व होता है, न चिता और शोक।

बौद्ध साहित्य में भिक्षु कोटिकर्ण की कहानी बहुत ही प्रेरणादायी है। भिक्षु कोटि-कर्णश्रोण अपने गृह-जीवन मे बहुत ही धनी मानी था। उसके कानो के कुडलो का मूल्य ही था एक करोड स्वर्ण मुद्रा। इसी कारण लोग उसे 'कोटिकर्ण' कहने लग गये। किंतु एक दिन उसे धन की नि सारता और अशरणता प्रतीत हुई और वह समस्त सपत्ति का त्याग कर भिक्षु बन गया।

भिक्षु के वैराग्य की कहानी लोगो की जबान पर नाच रही थी। एक वार वह एक नगरी मे आया तो उसे देखने-सुनने को जनसमुद्र उमड पडा। हजारो हजार व्यक्ति उसकी सभा मे दत्तचित्त होकर उसके वैराग्य की कहानी सुनने लगे। उसकी वाणी और जीवन-कथा इतनी मधुर और हृदयग्राही थी कि प्रात काल से सध्या हो चली थी पर सभा ज्यो की त्यो जमी रही।

उस सभा मे एक कात्यायनी नामक धनाढ्य गृह-स्वामिनी भी बैठी थी। सध्या होने पर उसने दासी को

कहा—तू जा, और घर में दीपक जलादे, यह अमृतोपम उपदेश छोड़कर आने का मेरा तो जी नही करता।

दासी अपने भवन में पहुँची तो वह हक्को बक्की रह गई। वहाँ सेध लगी थी, भीतर मे चोर स्वर्ण आभूषणों की गठरिया वाध रहे थे। चोरों का सरदार बाहर खडा निगरानी रख रहा था।

घबराई हुई दासी उलटे पावो लौट पडी। चोरो का सरदार उसके पीछे-पीछे चल पडा कि देखे यह कहा जाकर किसे खबर देती है। दासी स्वामिनी के पास पहुँचकर घबराये हुए स्वर में बोली—'स्वामिनी ! घर में तो चोर घुस गये'। कात्यायनी ने कुछ सुना ही नही, वह उपदेश सुनती रही। दासी ने घबराकर कहा—'मा ! मां ! सुनती नही हो, घर मे चोर घुस आये है ! समस्त स्वर्ण आभूषण लिये जा रहे है।'

कात्यायनी ने धीमे से आँख ऊपर उठाई। 'पगली ! वे ले जाते है तो ले जाने दे। वे सब स्वर्ण आभूषण नकली है। इतने दिन मैं अज्ञान मे थी, उन्हे असली मान बैठी थी। जिस दिन उनकी आँख खुलेगी वे भी पछतायेगे, उसे नकली पायेगे। मुझे सच्चा स्वर्ण तो आज मिला है'। इसे कोई चुरा ही नही सकता' कात्यायनी का उत्तर सुन दासी आँखे फाडकर उसकी ओर देखती रही, वह समझ नही सकी, स्वामिनी आज क्या कह रही है।

पीछे खड़े चोरो के सरदार ने यह सब सुना तो

उसकी आँखे फटी रह गई। जैसे कोई वर्षों से बद द्वार सहसा खुल गया हो,—"है ! क्या कह रही है ?, क्या वह सब नकली है ?, फिर असली स्वर्ण क्या है ? हमें वह नकली सोना लेकर क्या करना है जिसके रहने और जाने से उसके स्वामी को न हर्ष हो, और न शोक ! हमे भी तो वही सोना चाहिए जिसके कारण यह गृहस्वामिनी अपने को धन्य-धन्य मान रही है।" चोरो का सरदार वही डटा रहा, और भिक्षु की हृदय-बोधक वैराग्य कथा सुनने में लीन हो गया।

चोरो के सरदार का मन जाग उठा। जैसे सघन अध-कार मे कोई दीप जल उठा हो। वह सिर पर पॉव रख कर दौडा-अपने साथियो के पास आया—"मित्रो ! यह सोना नकली है, इस की गठरिया मत बाधो ! आओ ! तुम्हे असली सोना दिखाऊ !"

चोरो ने सब स्वर्ण आभूषण ज्यो के त्यो वही डाल दिए। सरदार के पीछे-पीछे वे भिक्षु कोटिकर्ण श्रोण के निकट पहुचे। वैराग्य के प्रकाश में उन्हे आत्मा के असली स्वर्ण का दर्शन मिला और वे धन्य-धन्य हो गए !

सच है—

जब आवै संतोष धन सब धन धूलि समान।

२३
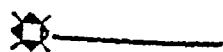
बुद्धि को उलटिए

एक नाव समुद्र की बलखाती लहरो पर चल रही थी। उसमें अनेक यात्री बैठे थे। एक सत भी उस नाव से यात्रा कर रहा था। कुछ दुष्ट और शरारती व्यक्ति उस नाव में थे। वे परस्पर अट्टहास, निन्दा और अश्लील मजाके कर रहे थे। सत ने उन्हे कहा—बन्धुओ ! बात करना है, तो कुछ ऐसी अच्छी बाते करो, जिन्हें सुनकर दूसरो को भी प्रसन्नता हो, तुम्हारी बाते सुनकर तो सभी यात्रियो के मन में लज्जा और घृणा उमड रही है।"

संत की शिक्षा ने जैसे साप की पूंछ पर पैर रख दिया। वे सत को गालियाँ देने लगे। संत मौन होकर प्रभु भजन में लीन हो गया। उन दुष्टो का क्रोध चोट खाये नाग की तरह दुगुने वेग से उफन पडा। सत के सिर पर वे जूते लगाने लगे, उस पर थूकने लगे। घूसे और लातो से मरम्मत करने लगे। संत अपनी प्रार्थना मे मस्त था। तभी आकाशवाणी हुई—संत ! तुम कहो, तो इन दुष्टो

को अभी करनी का फल चखा दूं, इस नाव को उलट दू ?'

आकाशवाणी सुनकर यात्री घवराए। दुष्टो ने सत के पैर पकडे और आँसू बहाकर क्षमा माँगी।

पुन· आकाशवाणी हुई—'सत ! बोलो ! तुम चाहो तो अभी इस नाव को उलट दू।'

सत ने आँखे खोली—और विनम्र स्मित के साथ आकाश की ओर देखकर कहा—'देव ! तुम उलटना ही चाहते हो तो, इन सब की बुद्धि को उलट दो। नाव को उलटने से क्या होगा ?'

वास्तव मे तो मनुष्य की कुबुद्धि ही उसे दुष्टता की ओर प्रेरित करती है। फिर उस कुबुद्धि को ही मिटाना चाहिए, कुबुद्धिवान को मिटाने से क्या लाभ ?

भारतीय सस्कृति का यही अमर सगीत है—कि मनुष्य ! अपनी बुद्धि को निर्मल रख ! अपने मन को पवित्र रख ! तेरा कर्म तो मात्र मन और बुद्धि का प्रतिविम्ब है। मन कुआँ है, कर्म जल है। कुएं में यदि मलिन और खारा पानी होगा तो कर्म के डोल मे साफ और मीठा पानी कहाँ से आयेगा ? इसलिए सर्वप्रथम मानव को यही सदेश दिया गया है—

मा ते मन स्तत्रगान् मा तिरोभूत।

—अथर्ववेद ८।११।७

मनुष्य ! सावधान रह ! तेरा मन कभी कुमार्ग में न

जाये, यदि चला जाये तो उसे तुरत मोड़ले, वहाँ उसे लीन मत होने दे।

यही बात गणधर गौतम ने कही है—

मन रूपी घोडा जो दौड लगाता हुआ कुमार्ग में जाना चाहता है, मैं उसकी लगाम पकडे बैठा हूँ और उसे सन्मार्ग की ओर बढाए चल रहा हूँ।

२४

तू भी सो जाता

•

जो अपने सत्कर्म के अहकार मे दूसरो की अवज्ञा करता है वह वास्तव में दुहरी मूर्खता करता है—अपने सत्कर्म को तो नप्ट करता ही है, पर दूसरो के दोष देखने का पाप भी करता है। इसीलिए ज्ञानीजनो ने बार-बार यह कहा है—

अन्नं जणं खिसइ बाल पन्ने

—सूत्रकृताग १।१३।१४

अपने ज्ञान के अहकार में दूसरो की अवज्ञा करना मूर्ख आदमी का काम है। बुद्धिमान किसी की भी निन्दा नही करे—**नो तुच्छ ए** (सूत्रकृताग) किसी के दोषो पर नजर नही टिकाए—

न सिया तोत्त गवेसए

—उत्तरा० १।४०

यदि तुम्हारे पास आँख है, देखने की शक्ति है, तो

मुस्कराते हुए फूलों को देखो, तुम्हें भी तृप्ति मिलेगी, आँखे भी प्रसन्न होगी। पतझड की सूनी सध्या पर आँखे दौडाने से क्या लाभ होगा ? गदगी पर नजर टिकाने से तो अच्छा है, आँखे बद ही रखी जाय !'....

शेखसादी ने अपनी आत्म कथा में लिखा है—'बचपन में वह भगवान की खूब भक्ति किया करता था। सुबह बहुत सबेरे उठकर नमाज पढता और कुरान शरीफ का पाठ करने बैठ जाता।'

एक बार मस्जिद में अपने पिता के पास बैठकर कुरान-शरीफ का पाठ करने बैठा। बहुत रात बीत गई, आस - पास के सभी लोग नीद में खुर्राटे भरने लग गए, पर सादी की आँखो मे बल भी नही पडा। अपने पिता से कहा—'अब्बाजान ! देखिए ये लोग तो मुर्दों से भी बाजी मार ले गए। अल्लाह की फिक्र भी नही है इन्हे !'

पुत्र की बात सुनकर पिता ने दुःखी दिल से कहा—'बेटा ! अच्छा होता इन लोगो की तरह तू भी सो जाता, तो दूसरो के दोष (ऐब) देखने के पाप से तो बच जाता।' अगर तेरी आँखे सचमुच भगवान को देखती होती, तो औरो के दोष नही देख पाती। पर तू कुरान हाथ मे लेकर भी शैतान की आँखे लिए बैठा है।' सादी ने कान पकड़ा—सचमुच देखना हो तो किसी की भलाई देखना चाहिए, बुराई नही।
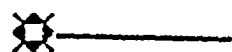
२५

संकड़ी गली

●

भगवान महावीर की एक दार्शनिक सूक्ति है—

जेण सिया तेण णो सिया

—आचाराग १।२।४

तुम जिन वस्तुओ और भोगों से सुख की इच्छा रखते हो, वस्तुत. उनसे सुख नही मिल सकता। चूकि भोग और सुख दोनो ही दो विपरीत मार्ग है। एक पूरब का एक पश्चिम का। धूप और छाह, आग और जल की तरह भोग और योग, लोकैपणा और आत्मैपणा दो सर्वथा भिन्न तत्त्व है। जब मन मे कामना होती है, तब विरक्ति नही आ सकती। जब मन मे चाह होती है, तब निस्पृहता कैसी ? इसीलिए तो कहा है—

जस्स णत्थि इमा जाई
अण्णा तस्स कओ सिया ?

—आचाराग १।४।११

जिसको लोकैषरगा नही है, उसे अन्य चिन्ताए और पाप-प्रवृत्तियाँ भी नही है। वस्तुत॰ जब मन लोकैषरगा मे रमता है, तब आत्मा की एषरगा नही हो सकती। राम और रावरग की तरह भोग और योग, त्याग और काम एक साथ नही रह पाते। कबीर की भाषा में—

प्रेम गली अति साकडी तामै दो न समाय।

इस सकडी गली मे त्याग और भोग साथ-साथ कैसे रह सकते है ?

एक बादशाह ने फकीर से पूछा—'कभी आप मुझे भी याद करते है ?'

फकीर ने जबाब दिया—'हाँ, हाँ, क्यो नही ?'

बादशाह ने खुश होकर पूछा—'भला किस वक्त ?'

फकीर ने निर्भयता के साथ कहा—'जब भगवान को भूल जाता हू, तब आपकी याद आ जाती है।'

वास्तव मे जब साधक भगवान को, अर्थात् अपने को भूल जाता है, तभी वह दूसरो को याद करता है।

२६
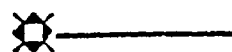
नाम के लिए

तथागत बुद्ध ने कहा है—

अनरियधम्मं कुसला तमाहु
यो आतुमानं सयमेव पावा।

—सुत्तनिपात ४।४१।३

जो स्वय अपनी प्रशसा (आत्म-प्रशसा) करता है, वह अनार्य धर्म का आचरण करता है।

आत्मप्रशसा, आत्मख्याति की भावना धर्म के क्षेत्र में सदा-सदा से निषिद्ध है। आचार्य शंकर ने तो यहा तक कहा है—**आत्मानं च ते घ्नन्ति ये स्वर्गप्राप्तिहेतूनि कर्माणि कुर्वन्ति**—(केनोपनिषद शांकर भाष्य) जो केवल स्वर्ग या परलोक के सुख के लिए कर्म करते है, वे सचमुच में अपनी आत्म-हत्या करते है।

पर, स्वर्ग की कामना तो दूर, आज तो मनुष्य लौकिक लाभ, यश और कीर्ति की भावना से मरमिट रहा है। अपनी प्रसिद्धि और नाम के लिए धर्म क्षेत्र को

भी सौदा बना रहा है।

प्रायः देखा गया है, धर्मशाला, अस्पताल, स्कूल, उपाश्रय और मंदिरो का निर्माण करने वाले, परलोक के पुण्य की अपेक्षा इस लोक के यश को ही सर्वस्व मान रहे है और उस निर्माण पर अपने नाम का शिलालेख लगाकर अपूर्व आत्म तुष्टि से पुलक उठते है, जैसे कोई अनन्त पुण्य का अर्जन कर चुके हो।

एक दार्शनिक कही घूमता हुआ एक सडक पर से गुजरा। उसने देखा, सामने एक विशाल मदिर का निर्माण हो रहा है। दार्शनिक को आश्चर्य हुआ—आज तो मदिर मे जाने वाले घट रहे है, अनेक मदिर सूने पड़े है, उनमे जाकर कोई घंटी घडियाल भी नही बजाता, वहा नया मदिर बन रहा है? वह जिज्ञासा लिए उस मदिर की ओर बढ गया।

मन्दिर के मुख्य द्वार पर पहुँच कर उसने लोगो से पूछा—यह मन्दिर क्यो बन रहा है?

लोगो ने दार्शनिक की ओर घूर कर देखा—क्या कोई पागल तो नही है? यह भी कोई प्रश्न है? मन्दिर तो बन रहा है, भगवान के लिए!

दार्शनिक को सही उत्तर नही मिला, वह और भीतर चला गया। एक बूढा कारीगर जो सब की देख रेख कर रहा था, बैठा था। दार्शनिक ने उसके सामने वही प्रश्न दुहराया—मन्दिर क्यो बन रहा है?

बूढे कारीगर ने अपने हाथ से हजारो मन्दिरो का निर्माण किया था। वह दार्शनिक की उत्सुकता को समझ रहा था, दार्शनिक का हाथ पकड एक ओर ले गया। वहाँ अनेक कारीगर भगवान की मूर्तियाँ तैयार कर रहे थे। दार्शनिक ने सोचा—शायद यही उत्तर मिले, कि भगवान की इन मूर्तियो के लिए वह रुक गया।

कारीगर ने दार्शनिक को सकेत किया, वह और आगे बढा। एक श्वेत शिलापट्ट की ओर सकेत करके कारीगर ने कहा—देखा, क्या हो रहा है ?

दार्शनिक ने गौर से देखा, उस पर निर्माणकर्ता का नाम-परिचय लिखा जा रहा था। कारीगर ने कहा—'समझे ! इसीलिए मन्दिरो का निर्माण होता रहा है, और होता रहेगा।'

दार्शनिक की आँखो में संतोष के साथ मानव मन की विडम्बना पर आश्चर्य भी झलक उठा—'मानव ने धर्म और भगवान पर भी अपने नाम की मोहर लगानी शुरू कर दी।'

२७

सच्चा साधु

•

जिसने ममता को मार दिया—वह मुनि है। कहा है—

से हु दिट्ठपहे मुणि जस्स नत्थि ममाइयं

—आचाराग १।२।६

वही मुनि सच्चा मोक्ष का द्रष्टा है, अपने पथ का ज्ञाता है, जिसके मन मे ममता की गाठ नही है।

जो साधु होकर भी धन की आशक्ति मे डूबा है, पैसे का पाजी बना है, वह कैसा साधु ?

एक राजा के जन्मदिवस पर अनेक बहुमूल्य उपहार आये। राजा बडा धार्मिक प्रकृति का था। उसने अपने प्रधान को आदेश दिया कि—आज के उपलक्ष्य मे आये हुए समस्त उपहार नगर के साधु सन्यासियो में बॉट दो।

राजा की आज्ञा से प्रधान नगर मे साधु सन्यासियो की खोज करने निकला और शाम को समस्त उपहार ज्यो के त्यो लाकर राजा के सन्मुख रख दिए। राजा ने

आश्चर्य के साथ पूछा—यह क्या ? साधु सन्यासियो को नही बाँटा ?

प्रधान ने विनम्रता के साथ कहा—'महाराज ! दिन भर नगर मे घूमता रहा, पर कोई साधु सन्यासी ही नही मिला ? जो वास्तव मे साधु हैं, वे तो इन उपहारो को छूते भी नही, और जो इन उपहारों की अभिलाषा करते है, वे वास्तव मे साधु नही, अब आप ही कहिए मैं किन को दू ?'

राजा ने प्रसन्नता के साथ प्रधान को धन्यवाद दिया-वास्तव मे ही तुमने साधु सन्यासियो की सच्ची परीक्षा की है। सच्चे साधु को धन से क्या लेना है ?

२८

समस्या की समस्या

❁

आज समस्याओ का युग है—चारो ओर समस्याएं खडी है, मनुष्य उनमें उलझ गया है वैसे ही, जैसे मौत से डरा हुआ पछी किसी जाल मे उलझ जाता है।

पर, सचमुच ही क्या इतनी समस्याए है जितनी हम सोच रहे है ? हम समस्या को निकट से देखते भी है, या केवल समस्या की कल्पना से ही स्वय को दिग्मूढ बना रहे है ? मेरा विश्वास है, वास्तविक समस्याए उतनी नही है, जितनी हमने कल्पना करली है। समस्याओ की भी समस्या यह है कि समस्या को निकट से, स्थिर विचार से देखने परखने की आदत नही है, किन्तु समस्या का माहोल खडा कर उसके कल्पित भय से ही हम अधिकांशत· व्यामूढ हुए जा रहे है।

एक कहानी है। किसी राजा को एक बुद्धिमान मत्री की आवश्यकता हुई। उसने राज्य के बुद्धिमान व्यक्तियो की परीक्षाए ली। अनेक परीक्षाओ के बाद तीन व्यक्ति

चुने गये। अब उन तीन मे से भी एक सर्वाधिक बुद्धिमान को चुनने का प्रश्न आया। राजा ने उनके चुनाव-परीक्षण का भी एक दिन निश्चित किया। उन तीनो की परीक्षा की पहली रात को नगर मे एक अफवाह उडा दी गई कि कल राजा इन तीनो व्यक्तियो को एक कमरे में बद करेगा, और उस पर एक ऐसा विचित्र ताला लगाया जायेगा जो भीतर से ही खुल सकेगा। वह चाबी से नही, किन्तु गणित विधि से खोला जा सकेगा। जो गणित मे सबमे अधिक प्रतिभाशाली होगा वही उसे खोल सकेगा।

उन तीनो ने भी यह अफवाह सुनी, उसमे से दो व्यक्ति बडे चिन्तित हो उठे। वे रात भर तालो के सबध मे लिखे गये अनेक शास्त्रो के पन्ने उलटते रहे। और गणित के नियमो को समझने मे मगजपच्ची करते रहे। रात भर जगने से उनकी आँखे सूज गई थी, चेहरा धूप खाये फूल की तरह कुम्हला गया था। चिता और उत्ते-जना के कारण उनका मानसिक सतुलन भी बिगड़ गया था।

किंतु तीसरा व्यक्ति बिल्कुल बे परवाह था। वह रात भर शाति से सोया और सुबह प्रसन्नता एव ताजगी के साथ उठकर अपने नित्य कर्म मे लग गया।

राजभवन मे जाने के समय उन दोनो के पॉव डगमगा रहे थे। उनके हाथो मे गणित की बडी-बडी पुस्तके थी, आँखे नीद से भारी हो रही थी। पर तीसरा व्यक्ति बिना किसी तैयारी के प्रसन्नता के साथ राज भवन

के उस कक्ष में जा पहुँचा, जहाँ वे दोनो पहले से ही बैठे गणित की पुस्तके चाट रहे थे ।

अफवाह सच निकली । उन तीनो व्यक्तियो को एक कक्ष मे बद कर द्वार पर एक विचित्र ताला लगाया गया, जिसपर अकित गणित के अनेक अक, व रेखाए यह स्पष्ट कर रहे थे कि वास्तव में ही यह ताला खोल पाना बडी टेढी खीर है, गणित की पहेलियो से जूझे बिना यह ताला नही खुल सकेगा । ताला लगाकर घोषणा की गई कि—'जो इस कक्ष का ताला खोलकर सर्व प्रथम बाहर आयेगा वही राज्य का प्रधान चुना जायेगा ।'

दोनो व्यक्ति ताले पर लगे गणित अंको के अनुसधान में जुट गए । बीच-बीच मे गणित की पुस्तकें खोल-खोल कर टटोलने लगे । समय कम था, और ताला खोलना बडा विकट हो रहा था । भाग्य निर्णय की घडी निकट आ रही थी, कुछ ही क्षणो में बारा-न्यारा होने वाला था । चिंता और भय के कारण उन दोनो के सिर पर से पसीने की बूदे टप टपाने लग गई ।

तीसरा व्यक्ति जो अब तक निश्चित बैठा था, उसने न कोई गणित की पुस्तक पढी, और न कोई ताले पर लिखे गये अको का अध्ययन ही किया । वह कुछ देर आँखे बंद किए बैठा रहा । फिर सहसा उठा, धैर्य और शाति के साथ चलकर द्वार के ताले के पास आया । धीरे से उसने ताले पर पंजा लगाकर घुमाया तो बस ताला खुल गया ।

वास्तव मे वह ताला खुला ही था। ताले की यान्त्रिक बाते सब मात्र धोखा थी। पर इसका ज्ञान तो इन तीनो को कहा था ?

वह व्यक्ति द्वार खोल कर जैसे ही वाहर आया—राजा ने उसका स्वागत किया। गणित की पहेलिया बुझाने वाले वे दोनो महानुभाव अब भी आकडो मे उलझ रहे थे। राजा को जव अपने सामने खडा देखा तो वे अवाक् से रह गये। राजा उनकी ओर देख कर हँसा—'महाशय ! समस्या से उलझ तो रहे हो, पर पहले यह भी तो देखना था कि वास्तव मे समस्या कुछ है भी या नही ? जो समस्या को विना समझे ही उसका समाधान खोजने मे जुट जाता है, वह राज्य का प्रधान तो क्या, एक गृहस्थी का कुशल स्वामी भी नही बन सकता !'

२६

झंडा और पर्दा

भगवान महावीर का एक नीतिवचन है—

माणेण अहमा गई

—उत्तराध्ययन

अहकार से अधोगति होती है ।

ससार में ऐसी कौन सी विपत्ति है, जो अहंकार से नही आती ! अर्थात् समस्त विपत्तियो का, दु:खो का मूल अहकार है । आचार्य शय्यभव का वचन है—

विवत्ती अविणीयस्स संपत्ति विणियस्स य

—दशवैं० ६।२।२२

अहकारी को विपत्ति और विनम्र को संपत्ति मिलती है । इसलिए तो महर्षि वशिष्ठ ने अहकार को जगत् के समस्त दु:खो का बीज बताया है—

अहमर्थो जगद् बीजम्

—योगवाशिष्ट ४।३६

एक बार वादशाह के एक शाही झडे ने राजमहलो के द्वार पर लगे पर्दे से कहा—'भाई ! तुम तो वडे भाग्य-शाली हो। देखो, तुम और मैं दोनो एक ही कपास से पैदा हुए है, अपने माता-पिता एक है, दोनो का स्वामी भी एक है, किन्तु दोनो के भाग्य मे कितना अन्तर है। मैं सदा हवा मे थपेडे खाता रहता हूँ। दिन-रात दौड लगाते दम-भर आता है, जगल-जगल घूमना पडता है, कठोर हाथो मे, बॉस की शूली पर टगे-टगे, युद्ध के मैदानो मे शहनाइयो से मेरे तो कान वहरे हुए जा रहे है, कितना कठिन और कष्टमय है मेरा जीवन ! धूप, ऑधी, वर्षा और सर्दी की मारो से कचूमर निकला जाता है। क्षण भर का चैन नही। एक तुम हो, कि रात-दिन महलो की शीतल छाया और ठडी हवा मे आराम से, टहल रहे हो। राज-रानियो और दासियो के कोमल हाथो का स्पर्श पा कर मचल रहे हो। मधुर गीतो की झकार मे मस्त हुए झूम रहे हो। कितना सुखमय तुम्हारा जीवन !'

पर्दे ने मुख की ठडी सास लेकर कहा—'भाई ! इस का एक छोटा सा कारण है !'

झडे ने हवा मे शिर उठाते हुए पूछा—'क्या ?'

पर्दे ने धीमे से कहा—'तुम हमेशा अपना सिर अहं-कार से ऊपर उठाये चलते हो, जबकि मेरा सिर नम्रता के साथ हमेशा नीचे झुका रहता है।'

३०

अंधा कौन ?

●

आचार्य शंकर से किसी ने पूछा—अधा कौन ?

आचार्य ने उत्तर दिया—'**अंधो हि को यो विषयानुरागी** !' जिसकी बुद्धि विषयो से ग्रस्त हो गई है, वही अधा है।

आज के युग मे कोई पूछे कि-अंधा कौन ? तो मैं तो कहूगा —'**अंधो हि को यो निजस्वार्थद्रष्टा**' जो केवल अपना स्वार्थ देखता है, वह द्रष्टा होते हुए भी अधा है, क्यो कि दूसरो का लाभ और हित देखने की दृष्टि उसके पास नही है।

मुझे एक पुरानी कहानी याद आती है। एक नगर में धनाढ्य सेठ रहता था। उसके एक ही सतान थी-एक पुत्री। और वह भी बडी कुरूप ! कुरूप भी ऐसी कि जिसे देखकर कुरूपता भी शर्म से नीचा सिर झुकाले ! कन्या बडी हुई तो पिता को उसके विवाह की चिता लगी। कन्या के विवाह में उसने अपार धन देने की घोषणा की,

पर, कोई भी आदमी उसके साथ विवाह करने तैयार नही हुआ। आखिर धन से कुरूपता तो नही ढकी जा सकती।

एक बार एक अधा दरिद्र नौजवान कही से भटकता हुआ धनी के द्वार पर पहुँच गया। धनी ने उसे धन का लालच दिखाया। उसने भी सोचा—कुरूप हो या सुन्दर, आखिर मेरे लिए तो बराबर है, यहा तो भैस और गाय मे कोई फर्क नही, फिर रोटी का आराम तो मिलेगा, दरिद्रता चली जायेगी।, अधे ने उस कुरूप कन्या के साथ विवाह कर लिया।

कुछ दिनो बाद लका का एक बहुत बडा वैद्य उस नगर मे आया। वह अधो की आँखे ठीक कर देता। हजारो अधो को उसने आँखे देदी थी। नगर मे उसकी हलचल मची तो कुछ लोगो ने धनी सेठ से कहा—सेठजी ! ऐसा मौका फिर से हाथ नही आयेगा, अपने जँवाई की आँखे भी ठीक करवा लीजिए।"

सेठ ने क्रोध मे आकर उनको गाली दी—"दुष्टो ! क्या तुम यही चाहते हो कि मेरा दामाद ज्योही आँखो से मेरी लडकी को देखे तो उसे छोडकर भाग निकले।"

अधे ने जब ससुर का उत्तर सुना तो बोला—'चलो अच्छा ही हुआ, इस घर मे एक नही, दो अधे मिले। मैं तो आँखो से ही अधा हूँ, लेकिन मेरे ससुर साहब तो नीयत से भी अधे हो रहे हैं।'

३१

कोई रोगी नहीं मिला

आयुर्वेद के आचार्य वाग्भट्ट का एक वचन है—

'कोऽरुक् ?'—अर्थात् स्वस्थ नीरोग कौन है ? उत्तर में कहा है—**'हितभुक् मितभुक् शाकभुक् चैव'**–हितकारी एवं परिमित शाकाहार करने वाला नीरोग रहता है।

महान् श्रुतधर आचार्य भद्रबाहु ने स्वस्थ जीवन के उपाय बताते हुए एक बहुत ही महत्वपूर्ण बात कही है—

हियाहारा मियाहारा अप्पाहारा य जे नरा।
न ते विज्जा तिगिच्छंति अप्पाणं ते तिगिच्छगा ॥

—ओघनिर्युक्ति ५७८

जो मनुष्य हिताहारी, मिताहारी एव अल्पाहारी है, उन्हे किसी वैद्य के द्वार खटखटाने की जरूरत नही, वे स्वयं अपने वैद्य है, अपने चिकित्सक आप है।

इसी सदर्भ में फारसी गद्य के जनक शेखसादी की एक कहानी मुझे याद आ रही है।

एक वार ईरान के एक वादशाह ने अपने राज्य के सवसे प्रसिद्ध हकीम को हजरत मुहम्मद मुस्तफा की सेवा मे भेजा, इसलिए कि वह हजरत की समय पर सेवा करे, और उनकी प्रजा को स्वस्थ व नीरोग रखने मे मदद दे।

कई वरस गुजर गये। हकीम अरव मे रहा, पर वहां पडे-पडे उस पर सुस्ती छाने लगी, आज तक कोई उसके पास दवा लेने तो दूर, नाडी दिखाने भी नही आया। किसी ने उससे दवा के लिए पूछा तक नही। हकीम परेशान था, वह इतना होशियार, पर यहाँ उसकी होशियारी की किसी ने कीमत भी नही की। आखिर उससे रहा नही गया, और वादशाह के सामने उपस्थित हुआ—'हजरत! मुझे ईरान के शाह ने आपकी सेवा मे इसलिए भेजा था कि समय पर मैं आप लोगो की कुछ सेवा कर अपनी विद्या का चमत्कार दिखा सकूं। पर खेद है कि मुझे वीस वर्ष वीत गए, पर कोई मेरे पास नही फटका, किसी ने मुझसे कोई दवा दारू की सलाह तक नही ली! आखिर मैं वैठा-वैठा क्या करूँ?'

हजरत ने मुस्कराकर कहा—'हकीम साहव! आपका कहना ठीक है, मगर यहाँ के लोगो मे दो खराव आदते है। एक तो वे जव तक कडकडाती भूख से वेचैन नही हो जाते तव तक कुछ खाते नही, और दूसरे खाने को वैठते है तो आधे पेट ही उठ जाते है, जव पेट काफी खाली रहता है तो खाने से अपना हाथ खीच लेते है- इन

दो बुरी आदतो के कारण ही वे कभी आपकी सेवा में हाजिर नही हो सके !'

हकीम ने शर्म से सिर झुका लिया और कहा—'हजरत ! आप बिल्कुल सही कह रहे है । ये ही तो कुदरत के दो सुनहरे नियम है जो मनुष्य के स्वास्थ्य को सदा अक्षुण्ण बनाये रखते है । नीरोग और स्वस्थ जीवन के लिए ये ही दो उपाय है, और जब प्रजा स्वय ही इन नियमो का पालन करती है तो मेरे जैसे हकीमो की यहाँ कोई जरूरत ही नही । सब स्वय ही अपने हकीम है ।' और ईरान का हकीम बीस वर्ष बाद स्वस्थजीवन का महान् सूत्र सीखकर अपने देश को लौट गया ।

३२

ज्ञान का अधिकारी

•

उपनिषद् का एक वाक्य है—

तेषामसौ विरजो ब्रह्मलोको
न येषु जिह्ममनृतं न माया

—प्रश्न उपनिषद् १।१६

जिन मे न कुटिलता है, न कपट है, और न असत्य है, वे ही वास्तव मे शुद्ध, निर्मल ब्रह्मलोक को प्राप्त कर सकते है।

भगवान महावीर की वाणी मे भी यही प्रतिध्वनि गूंज रही है—

धम्मो सुद्धस्स चिट्ठइ—

—उत्तराध्ययन

शुद्ध एव सरल हृदय मे ही धर्म ठहरता है।

जिसका अन्त करण सरल एव निश्छल है, वही पवित्रता रहती है, और जहा पवित्रता होती है, वही

सत्य, ज्ञान एवं ईश्वर का निवास होता है। इसलिए यह उक्ति सत्य है—सरल हृदय ही भगवान का मदिर है।

तथागत बुद्ध ने तो कहा है—जो कुटिल आचरण करता है वह चाडाल है और जो सरल हृदय होता है वही ब्राह्मण है, वही ज्ञान प्राप्त करने का सच्चा अधि-कारी है।

सत्यकाम जाबाल के नाम से एक जाबालोपनिषद् प्रसिद्ध है। उसमे वर्णन है—एक बार ऋषि हरिद्रुमत गौतम के आश्रम मे एक भोलाभाला तेजस्वी किशोर आया। श्रद्धा के साथ ऋषि के चरणो मे सिर झुकाकर बोला—'आचार्य ! मैं सत्य और ब्रह्म की खोज करने आया हू। आप अनुकपा कर मुझे ब्रह्म विद्या दे। अधे को चक्षु का दान दीजिए ऋषिवर !'

ऋषि ने गभीर दृष्टि युवक की भोली सूरत पर डाली। उसकी निश्छल आँखो में अपूर्व निर्मलता थी। ऋषि ने पूछा—'वत्स! तेरा गोत्र क्या है? तेरे पिता कौन है?'

किशोर को न अपने गोत्र का पता था, और न पिता का। वह सकुचाकर नीचा सिर किए खडा रहा। और दो क्षण रुककर उल्टे पॉव चल पडा।

कुछ समय बाद पुन किशोर आश्रम में पहुँचा और ऋषि के समक्ष आकर बोला—'आचार्य! मुझे न अपने गोत्र का ज्ञान है न अपने पिता का! मेरी माँ भी नही

जानती, मेरा पिता कौन है? मैंने अपनी माँ से पूछा, उसने बताया कि युवावस्था मे वह अनेक पुरुषो के साथ रमरण करती रही है, इसलिए वह भी ठीक-ठीक नही वता सकती कि मेरा पिता कौन है। मेरी माँ का नाम जाबाली है, और मेरा नाम सत्यकाम ! मेरी माँ ने कहा है–इसलिए मैंने सब सही-सही आपको बता दिया है, अव मुझे व्रह्म विद्या सिखलाए, मैं उसी की खोज मे भटक रहा हूं।"

ऋषि इस सरल सत्य से अभिभूत हो उठे। स्नेह गद्-गद् हो उन्होने सत्यकाम को हृदय से लगा लिया—"तुम सचमुच ही ब्राह्मरण हो, ब्रह्म विद्या के अधिकारी हो। जिस हृदय में सत्य की इतनी सरल अभिव्यक्ति होगी, वही तो ब्रह्म विद्या पा सकेगा। उसके लिए गोत्र और कुल कभी बाधक नही हो सकते। सत्यवक्ता ही तो ब्रह्म विद्या का सच्चा अधिकारी होता है।

सत्य और ज्ञान पाने के लिए और कुछ नही, बस, निर्मल निश्छल हृदय चाहिए।

३३

उठ ! चल पड़ !

जो बैठा रहता है, मजिल उससे दूर चली जाती है जो चलता है, मजिल उसके चरणो मे स्वय आकर खडी हो जाती है। उपनिषद् का एक वाक्य है—

यदा वै करोति, अथ निस्तिष्ठति

छादोग्य उपनिषद् ७।२१।१

मनुष्य जब काम करने लगता है तो निष्ठा स्वयं जग जाती है। जो चलने से पहले ही यह सोचता रहे कि इतना लम्बा रास्ता है, मेरे पास साधन कुछ नही, कैसे इसे पार कर सकूगा, वह कभी दो कदम भी नही चल सकता। वह मूर्ख यह नही सोच पाता कि जितने साधन है, उतनी दूर तो चल, आगे और साधन मिल जायेगे। भविष्य की थोथी कल्पना लिए क्यो डर रहा है ? अपने प्राप्त साधनो का उपयोग कर और चल पड—

चलते है जब चरण स्वय पथ बन जाता है।

और सुना है तू ने--राम के सामने कितना बड़ा कार्य

था लका विजय । समुद्र को पार करना और उस महा-बली रावरण से लोहा लेना, और सेना क्या थी मुट्ठी भर बन्दर । रहने को एक गॉव नही, शस्त्रो के नाम पर कुछ पुराने जग खाये शस्त्र । पर आत्मबल की एक हुकार ने राम के चरण लका की ओर बढा दिए, राम ने लंका पर विजय ध्वज फहरा दिया—बानर सेना के बल पर नही, आत्मबल पर । इसीलिए कहा है—

क्रियासिद्धिः सत्वे वसति महतां नोपकरणे

–धैर्यशाली जनो की शक्ति साधनोमें नही,किन्तु उनके साहस मे रहती है। साधनं तो स्वय जुट जाते है। जब चल पडने का साहस होता है तो मार्ग स्वय दीख पडता है !

एक ऊँचा पहाड था । आस पास मे उसके विषय मे यह जनश्रुति थी कि उसकी चोटी पर भगवान शिवशकर पार्वती के साथ विराज रहे है । दिन निकलने से पहले जो चोटी पर पर पहुचता है उसे शिव के दर्शन हो जाते है ।

एक गॉव का भोला किसान रोज अपने खेतो से उस पहाडी को देखता और मन ही मन फुदकता उसकी चोटी पर चढकर भगवान के दर्शन करने । पर उसकी चढाई थी दस मील की । और चढने के लिए आधी रात को ही घर मे निकल जाना पडता था । किसान ने एक दिन शहर से लालटैन खरीदी, तैयारी कर पहाड पर चढने की उमग मे रात के बारह बजे ही वह घर से निकल पडा । पर, अपने खेत की मेढ तक आया तो उसके पॉव ठिठक

गए। उसके मन मे एक दुविधा खडी हो गई। रात का घुप्प अधकार है। चारो ओर सन्नाटा छाया है। और लालटैन का प्रकाश बहुत ही मन्द है, सिर्फ दस कदम ही उससे दिखाई पडते है, जबकि पहाड की चढाई दस मील की है। वह सोचता रहा—इस दस कदम तक पडने वाली रोशनी से दस मील कैसे चढा जायेगा? बस उसका उत्साह ठडा पड गया, वही दम डाल के बैठ गया।

तभी एक बूढा हाथ मे छोटी सी लालटैन लिए पहाडी की ओर जाता उधर से निकला। बूढे को रोककर किसान ने पूछा—बाबा, कहाँ जा रहे हो?

पहाडी पर, भगवान के प्रात.काल के दर्शन करने—बूढे ने बडी सजीदगी से जबाब दिया।

युवक किसान बोला—"बाबा, चला तो मैं भी था, पर हमारी लालटैन से तो सिर्फ दस कदम तक ही रोशनी पड़ती है, यह दस मील की चढाई कैसे पार पडेगी?"

बूढा उसकी बात पर हँसा—पागल कही का! दस कदम की रोशनी तो काफी है, पहले दस कदम तो चल, फिर देख आगे के दस कदम पर रोशनी और पडने लगेगी, जैसे चलेगा, आगे से आगे रास्ता दीखता जायेगा, एक कदम की रोशनी के सहारे तो मैं सारी धरती की परिक्रमा कर आऊँ! उठ! चल! चलने वाले को आगे से-आगे रोशनी मिलती जाती है।"

३४

दूषित भेंट
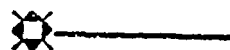
दान, शील, तप—ये मोक्ष के साधन है !

किंतु कब ?

जब वे आत्म शुद्धि के लिए किए जाते हो, यदि इन मे लोक दिखावे और प्रतिष्ठा की भावना आगई तो समझिए अमृत भी जहर हो गया। अन्न शरीर को बल देता है, पर कौन सा अन्न ? शुद्ध अन्न ! यदि दूषित अन्न खाया जाय तो वही प्राण नाशक भी बन जाता है।

इसी प्रकार धर्म, दान, पूजा, भक्ति आदि के साथ यदि लोक वासना-दिखावे की भावना आ जाती है तो वे सब शुभ कृत्य भी दूषित अन्न की भांति त्याज्य बन जाते हैं।

एक धनाढ्य सेठ ने भगवान के मंदिर मे एक हजार स्वर्ण मुद्राये अर्पित करने की घोषणा की। वह उन मुद्राओ की थैलियो को लेकर मूर्ति के समक्ष जाकर बैठ गया। थैलिया जोर-जोर से पटकने लगा ताकि उसकी

खन-खनाहट से सब लोगो का ध्यान उधर ही केन्द्रित हो जाय। हुआ भी ऐसा ही। जब वह स्वर्ण मुद्राए निकाल कर एक-एक गिनकर मूर्ति के सामने रखता तो बडी जोर की आवाज करता। उन्हे देखने के लिए काफी भीड जमा हो गई। जैसे-जैसे भीड बढती गई, वैसे-वैसे सेठ का आनन्द भी बढने लगा। लोगो की ओर कनखियो से देख-देख कर वह स्वर्ण मुद्राएं चढाता और जैसे आनन्द में उछल पडता।

सब मुद्राएं चढाने के बाद उसने गर्व के साथ उपस्थित भीड़ को देखा, उसका सीना फूल रहा था, और फिर पुजारी जी की ओर देखा।

वृद्ध पुजारी सेठ का नाटक देख रहा था, उसने कहा—"सेठ। ये मुद्राएं वापस ले जाओ, भगवान को नही चढ सकती।"

सेठ के अहकार पर जैसे चोट पडी, वह गर्जकर बोला—'क्यो नही चढ सकती महाराज!'

वृद्ध पुजारी ने गंभीर होकर कहा—'कभी दूषित व झूंठी वस्तु भी भगवान को चढती है? इन मुद्राओ को तुम्हारे अहकार ने झूंठी करदी है, ये अहंकार की वासना से दूषित है, इन्हें हटा लो भगवान के पवित्र मंदिर से ."

३५
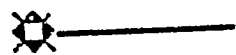
स्वतन्त्रता की झूठी पुकार

भगवान महावीर ने एकबार कहा—

वाया वीरियमित्तेण समासासेंति अप्पयं—

–जो मुँह से धर्म, दया और ईश्वर का नाम लेते रहते है, किंतु कर्म में कोरे चिकने घडे के साथी होते है वे केवल धर्म की बातो मे झूठमूठ ही अपने को आश्वस्त करते जाते है। वे स्वय को धोखा देते है। सचमुच ऐसे व्यक्ति वचनवीर होते है, कर्मवीर नही।

आज जिधर भी देखो, ये वचनवीर धर्म की पुकार लगाते सुनाई देंगे। करुणा, सेवा और सदाचार का उद्घोष करके उछलते दिखाई देंगे। देखने सुनने वाला सोचे–अहो! कितने धार्मिक है! कितने सदाचारी! कितने भले! पर वास्तव में वे जिस धर्म की बाते करते है, वह तो सिर्फ तोता रटत है, धर्म क्या है यह प्रश्न उनके मन और जीवन को कभी छू तक भी नही जाता।

एक बार स्वतत्रता सग्राम का एक सेनानी, किसी जेल से निकल कर अपने घर जा रहा था। रात को वह एक सराय मे ठहरा। सराय के मालिक ने एक तोता पाल रखा था। जब स्वतत्रता आदोलन की हवाए चारो ओर मचल रही थी तो मालिक ने भी अपने तोते को 'स्वतत्रता' की रट सिखाई।

सुबह पौ फटने से पहले ही तोते ने रट लगाई-"स्वतत्रता! स्वतत्रता! स्वतंत्रता!" थके मादे यात्री खुर्राटे भर कर सो रहे थे। पर, वह जेल से आया हुआ स्वतत्रता प्रेमी जाग रहा था। तोते की रट सुनी तो जेल जीवन की तीव्र पीडाए उसकी स्मृतियो मे ताजी हो गई, तब वह भी तीव्र वेदना के साथ चिल्लाया करता था-"स्वतत्रता! स्वतत्रता!" कितना प्यारा शब्द है! और कितनी पीडाएं हैं बदी जीवन मे!

तोता फिर जोर से बोल उठा- "स्वतत्रता! स्वतत्रता!"

उस यात्री को तोते की पुकार असह्य हो उठी। उसे लगा—यह विचारा भोला पक्षी, इस पिंजडे मे पड़ा कराह रहा है—और आजादी की पुकार कर रहा है। तभी पुन तोते ने जोर से चीख मारी–स्वतत्रता! स्वतत्रता! अब तो यात्री जैसे अपनी ही अन्तर वेदना से तिलमिला उठा, वह पिंजड़े के पास आया, तोता जोर-जोर से स्वतत्रता की पुकार लगा रहा था। उसने पिंजड़ा खोला, पर तोता पिंजडे के सीखचो को पकड़ कर भीतर ही बैठा रहा,

और स्वतन्त्रता—स्वतंत्रता—चिल्लाता रहा।

यात्री ने तोते की टाग पकड कर खीचकर बाहर निकाला, और मुक्त आकाश में उडाकर एक सुख की साँस ली। उसकी अन्तरात्मा को शाति मिली, कि एक प्राणी को उसने स्वतंत्र कर दिया।

पर, वह अपने बिस्तरे पर जाकर सो भी नही पाया था कि तोता उडता-उडता फिर पिजडे मे घुस गया—और जोर-जोर से चिल्लाने लगा—"स्वतन्त्रता! स्वतन्त्रता! स्वतन्त्रता!"

यात्री ने सिर पर बल लेते हुए कहा—"झूठी है इसकी स्वतन्त्रता की पुकार! दभी! नीद हराम कर रहा है।"

आज के धर्मात्माओ की धर्म-पुकार भी क्या ऐसी नही है?

३६

दिल बदल !

निर्ग्रन्थ परम्परा के महान् तत्त्वज्ञानी गणधर इन्द्रभूति से एकबार श्रमण केशीकुमार ने पूछा—'कोई श्रमण रगीन वस्त्र पहनता है, कोई सफेद और कोई पहनता ही नही, इस विभिन्नता का क्या कारण है ? एक ही मार्ग के अनुयायी इस तरह अलग-अलग दिशाओ मे क्यो चलते है ?'

इन्द्रभूति तत्त्वज्ञान की गहराई में डुबकी लगाते हुए बोले–न तो वस्त्र रखने से मुक्ति अटकती है, और न वस्त्र उतारने से मुक्ति मिलने की ही कोई निश्चिति है, वस्त्र तो मात्र एक आवरण है देह की लज्जा के लिए ! –लोगो को सहज परिचय देने वाला एक परिवेष है–एक चिन्ह हैं।

भगवान महावीर ने इसी बात को एकबार यों प्रकट किया था—

कुसचीरेण न तावसो —उत्त० २५।३२

वल्कल, वृक्ष की छाल ओढ लेने मे ही कोई तपस्वी नही हो जाता। तपस्वी तो वह होता है जिसने अन्तर मन को तपाया हो, जीवन को तपाया हो।

बाहरी वेष विन्यास की विडम्बना दिखाते हुए एक बार तथागत ने कहा था—

किं ते जटाहि दुम्मेध! किं ते अजिनसाटिया ?

—धम्मपद २६।१२

मूर्ख ! जटाओ से और मृग छालाओ से तेरा क्या भला होगा ? जब मन के गहन-गह्वर मे राग-द्वेष का मल भरा पडा है तो बाहर क्या धोता है ?

वास्तव मे ही वेष बदलने के साथ यदि राग-द्वेष नही छूटा, बाना बदलने के साथ 'बाण' (आदत) नही बदली तो शेखसादी की वही बात्त होगी कि शेर की खाल ओढ लेने से भेडिया शेर नही बन सकता।

एक बार सत अबुहसन के पास एक व्यक्ति आया और गिडगिडाकर बोला—'ऐ मेरे दरवेश ! मैं बडा पापी और जुल्मगार रहा हू। अब मुझे अपने पापो से घृणा हो रही है, मैं सन्यासी का पवित्र जीवन जीना चाहता हूँ, कृपा कर आप अपना यह पवित्र वस्त्र मुझे दे दीजिए ! बस, मेरा उद्धार हो जायगा।' उसने गिडगिडाते हुए अपना सिर सत के चरणो मे रख दिया और आसुओ से भिगोदिया संत के चरणो को।

संत ने उसका सिर प्यार से उठाया, और—'बोले मैं तुम्हे अपने वस्त्र दूँ उससे पहले—क्या तुम मेरी एक बात का उत्तर दोगे ?'

वह व्यक्ति तो बस एक ही याचना किए जा रहा था 'मुझे अपना पवित्र बाना दे दो, मेरा कल्याण हो जायगा। संत ने फिर उसी प्यार से कहा—'मित्र ! तुम्हारी इच्छा पूरी करूँगा, पर पहले मेरे एक सवाल का उत्तर तो दे दो।'

वह व्यक्ति आशा भरी नजर से ऊपर देखने लगा। संत ने कहा—क्या कोई स्त्री पुरुष के वस्त्र पहन लेने से पुरुष हो सकती है, या कि कोई पुरुष स्त्री के वस्त्र पहन कर स्त्री बन सकता है ?

'नही' ·मेरे दरवेश ! पर ··

हँसकर अबुहसन बोले—"तो लो ये मेरे वस्त्र ··· और वस्त्र ही क्यो, मेरे शरीर की खाल भी ओढ लो तो क्या होगा ?" हसन ने उस व्यक्ति की ओर देखा, वह स्वयं की भूल पर पछता रहा था, हसन ने कहा—'फकीर का वस्त्र पहनलेने से कोई सितमगर फकीर नही हो सकता, फकीरी के लिए तो दिल बदलना पड़ता है, कपडे नही ···।"

तू पवित्र जीवन जीना चाहता है तो दिल वदल ! कपडे बदलने से क्या होगा ?

३७
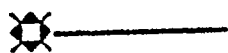
तुम कौन ?

एक बार एक सम्राट अपनी राजधानी की गलियो मे अकेला घूम रहा था। साझ का झुरमुटा हो गया था, अंधेरा घिर रहा था। एक सकडी-सी गली मे सम्राट निकल रहा था कि सामने से एक बूढा सन्यासी लकुटिया टिकाए आ रहा था। गली मे दोनो टकराए। सम्राट को जोर का धक्का लग गया तो बौखला कर बोला—"ऐ कौन हो तुम ?"

सन्यासी की तेजस्वी आँखो ने सम्राट की गर्वोन्नत काया को पहचान लिया, और लापरवाही से बोला—"एक महान सम्राट !"

सम्राट का क्रोध और भी भडक उठा, साथ मे आश्चर्य भी। यह कोई बूढा सन्यासी अपने आपको-एक महान् सम्राट बता रहा है ? सम्राट को उसकी मूर्खता पर हँसी भी आ रही थी। उसने व्यग के स्वर में पूछा—'किस भूमि पर आपका राज्य है ?'

सन्यासी ने कहा—"स्वयं पर ही ।"

सम्राट ने बात को दुहराया–'अच्छा ! सम्राट ! तो मैं कौन हूँ ?'

'तुम एक गुलाम !'

'किस का ?'

'अपने आपका ?'

सम्राट आगबबूला हो उठा। उसने सन्यासी को पकड कर जेल मे बन्द कर दिया और सुबह राज सभा मे उसके रात्रि के व्यवहार पर रोष प्रकट करते हुए पूछा —'तुमने स्वय को सम्राट कैसे कहा ?'

सन्यासी ने उत्तर दिया—"मैने अपनी वासना और इच्छाओ पर विजय प्राप्त कर ली है। तुमने मुझ पर क्रोध किया और जेल में बन्द कर दिया तब भी मेरे मन मे तुम्हारे लिए कोई रोष नही है किन्तु तुम सम्राट होकर भी अपने क्रोध को नही जीत सके, थोडा-सा छू जाने पर भी यो बौखलागए जैसे साप छू गया हो, तो फिर सम्राट कहा हुए ? अपनी वासना और विकारो के तो गुलाम ही रहे।"

सम्राट ने सन्यासी के सामने सिर झुका लिया।

वास्तव मे जिसने अपने अहकार और क्रोध को जीत लिया वही सच्चा विजेता है।

शकराचार्य से किसी ने पूछा —"विश्व विजेता की

क्या परिभापा है ? **जितं जगत्केन ?**

आचार्य ने उत्तर दिया—**मनोहि येन ?** जिसने मन को जीत लिया उसने जगत को जीत लिया।

महर्पि वशिष्ठ के शब्दो मे—

अहमर्थो जगद् बीजम् —योग वा० ४।३६

अहकार ही जगत है। अहंकार, क्रोध (कषाय) को जीतना ही परम विजय है—**एस सो परमो जओ**—बस, यही परम जय है।

३८

मृत्यु नहीं चाहिए

कभी-कभी एक विचार बिजली की तरह मन में कोध जाता है–मनुष्य कितना भी दु ख और सकट में पडा हो, कितनी ही वेदना और यत्रणा से तडप रहा हो, पर फिर भी वह चाहता है—"जीता रहूँ। कुछ दिन और जी लू!" क्या यह जीवन का मोह नही है ?

फिर सोचता हूं—"कुछ मनुष्य जीवन की पीडाओ से घबरा कर आत्महत्या क्यो कर लेते है ? अनेक लोगो को दु ख की ज्वालाओ मे जलते यह पुकार लगाते सुनता हूँ—"हे परमात्मा ! अब तो उठा ले ! मौत क्यो नही आती ? इस जीने से तो मरना अच्छा !" क्या वे सचमुच जीवन से निर्मोह हो गए है ?

कुछ गहराई मे उतरता हूँ और उनके अवचेतन को टटोलता हूँ तो पाता हूं–दोनो में ही एक समान जीने की तीव्र इच्छा है। मौत-मौत पुकारने वाला भी मौत की कल्पना से सिहर उठता है। जीवन को दुत्कारना सरल

है, मौत को पुकारना भी आसान है, किन्तु मौत से प्यार करना—कठिन, बहुत कठिन है। दीर्घदर्शी भगवान महावीर ने यही तो कहा था—ससार मे एक छोटे से छोटा जन्तु-कीडा और स्वर्ग का अधिपति इन्द्र—दोनो मे ही जीने की आकाक्षा समान है—"**अप्पियवहा, पिय जीविणो**"—उन्हे वध-मृत्यु अप्रिय है, जीवन प्रिय है, इसलिए किसी का जीवन मत लूटो।

एक पुरानी कहानी है,कई बार सतो के मुह से सुनी है। एक लकडहारा बडा दु खी था, लकडिया काटते-काटते हाथ भी लकडी हो गए थे, सिर पर भार ढोते-ढोते केश और टाट घिस गयी थी। बचपन से बुढापा आ गया, हिलते-चलते पाव डगमगाने लगे थे, फिर भी विचारे की दशा नही बदली, अब भी उसे एक मुट्ठी चना तभी मिलता जब लकडिया काटकर ले जाता, उन्हे बेचता। जीवन की इस कठोर यातना से वह हार गया। एक दिन भारी वाधते-वाधते उसे अपनी दुर्दशा पर रोना आ गया, और वह दु खावेग मे पुकार उठा—"हे परमात्मा! मुझे इन कष्टो को झेलते रहने के लिए इतनी लबी जिदगी क्यो दे दी! क्या मेरा मृत्यु पत्र तुम्हारी फाइल मे कही दव गया? मुझे क्यो नही उठालेते—इस जिन्दगी से मौत वेहतर है!"

कहते है लकडहारे ने जैसे ही पुकारा पीछे से एक अत्यंत ठडा पजा उसके गले पर पडा। वह चीख उठा—कौन है?

'तुमने मुझे अभी पुकारा था'–पीछे से आवाज आई।

उसका गला दबता चला गया, उन हाथो में जैसे वर्फ थी, बुड्ढा—कापने लग गया, और भय के मारे पसीने की धाराए छूट गई। "नही ! नही !—मैने तुमको नही पुकारा, तुम कौन हो ?"

तभी एक भयानक आकृति उसके सामने आ गयी। "मैं मृत्यु हूँ, अभी तुमने परमात्मा से प्रार्थना की, इसलिए मुझे तुम्हे उठाने के लिए भेजा गया है।"

बुड्ढे ने होश सभाला, और हाथ जोड कर बोला—'ओह ! भूल गया ! मुझे नही उठाना है, कृपा कर इस भारी को मेरे सिर पर उठवा दीजिए इसीलिए पुकारा था अव कभी नही पुकारूगा. और पुकारू तो कृपया आने का कष्ट मत करना।"

३६

एक दोष !

●

बुराई एक भी बुरी होती है। छोटे से छोटा दीखने वाला दुगुर्ण भी जीवन को दूषित कर डालता है जैसे छोटी सी चिनगारी लाखो मन रुई के ढेर को भस्म कर डालती है। एक छोटा सा काँटा छह फुट के विशाल शरीर में बेचैनी पैदा कर देता है, एक छोटा सा फोड़ा पूरे शरीर को रोगी बना डालता है, तो फिर एक दोष, एक दुर्गुण जीवन में क्या-क्या नही कर डालता होगा ?

महान् श्रुतधर आचार्य भद्रबाहु ने कहा है—

अणथोवं वणथोवं अग्गिथोवं कसायथोवं च
ण हु भे वीससियव्वं थोवं पि ते बहुं होई।

—आव० नि० १२०

ऋण (कर्ज) व्रण (घाव) अग्नि और कषाय—यदि इनका थोडा सा भी अश विद्यमान है तो उसकी उपेक्षा नही करनी चाहिए। ये अल्प भी समय पर विस्तार पाकर भयकर वन जाते है।

कहते है एक बार राजा भोज अपने सामंतो एव सेनापतियो के साथ बैठा था। सगति के कारण राजा का भी आकर्षण 'मद्यपान' की ओर हो रहा था। यह दुर्गुण आता देखकर कालिदास चौक उठा। उसने राजा को सावधान करने की दृष्टि से एक भिक्षुक का वेष बनाया और फटी-टूटी गुदडी शरीर पर डाले राजा की सभा में प्रवेश किया।

राजा ने भिक्षुक की सहस्रो छेदवाली कथा देखी तो कहा—"भिक्षुक ! तुम्हारी यह कथा तो बहुत जीर्ण हो गई है, इसमें तो छेद ही छेद हो चुके है।"

भिक्षुक ने हँस कर कहा—"महाराज ! यह कथा नही, मछलियाँ पकडने का जाल है।"

राजा ने आश्चर्य के साथ पूछा—"क्या ? तुम मछलियाँ भी पकडते हो ?"

"हाँ, महाराज ! खाने के लिए।"

"तो तुम मछलियाँ खाते भी हो ?"

'हाँ, महाराज ! शराब जो पीता हूँ तो माँस भी चाहिए !' भिक्षुक ने सहजभाव से उत्तर दिया।

राजा की आँखे फटी-सी रह गई। "क्या तुम शराब भी पीते हो ? कैसे भिक्षुक हो तुम ...?"

"महाराज ! वेश्याओ के साथ जो रहता हूँ, वहाँ तो बिना शराब और माँस के आनन्द ही नही आता....!"

"ऊफ ! भिक्षुक होकर भी यह सब ? आखिर इतना पैसा कहाँ से आता है तुम्हारे पास ?"

भिक्षुक ने जरा हँसकर कहा—"महाराज ! इसमें रहस्य की क्या वात है ? रात में चोरी करता हूँ, दिन मे जुआ खेलता हू वस पैसे की क्या कमी ?"

राजा तो आश्चर्य मे डूवा जा रहा था। भिक्षुक का वेष, और इतनी दुर्वृत्तिया ! शिकार, मद्य, मास, वेश्या-गमन, जुआ और चोरी ! आखिर सव दोष एक ही जगह आ गये।

राजा के आश्चर्य को भंग करते भिक्षुक ने कहा—"महाराज ! ऐसा तो होता ही है, जब एक दोष आ जाता है तो सब दोष अपने आप आ जाते हैं। मैंने मद्यपान शुरू किया और धीरे-धीरे ये सव दोष आ गये अव छूटते नही ! इसीलिए तो कहावत है—**छिद्रेष्वनर्था बहुली भवन्ति**—एक सुराख हजारो सुराख पैदा कर देता है। इसलिए प्रारम्भ मे ही छोटे से छोटे दोष को वड़ा समझना चाहिए।"

राजा को लगा, जैसे भिक्षुक ने एक रहस्य खोलकर रख दिया है। उसके सामने एक बहुत बडा उपदेश सुना दिया है, और सावधान करदिया है किसी भयकर खतरे से

कुछ दिन वाद कालिदास ने अनुभव किया, उसके नाटक का परिणाम सफल रहा, राजा भोज अपनी मर्यादा मे पुनः स्थिर हो गया है।

४०

स्मृति और विस्मृति

•

आज कुछ लोगो को स्मृति का रोग है, कुछ को विस्मृति का। देखता हू, जो बाते याद नही रखनी चाहिए जो स्मृति का कूडा करकट है, भार है, उसे तो लोग स्मृति पर ढो रहे है, और जो वास्तव मे ही स्मृति को सचेतन रखने वाली बाते है, जिनमें जीवन का आदर्श भरा है उन्हे भुलाये जा रहे है !

आप सोचते होगे—"क्या याद रखना चाहिए, क्या नही रखना चाहिए इसका कोई शास्त्र है ?

'है !' मेरी भाषा में ही नही, हजारो वर्ष पुरानी भाषा मे भी है। सुनिए यह प्रसंग।

ग्रीस का महान् तत्त्ववेत्ता अफलातू जीवन की अतिम शैय्या पर सोया था। तब कुछ लोग उनके पास आये और बोले-"जाते-जाते हमें कुछ बताते जाइए !"

अफलातू ने कहा-"गाँव के सब लोगो को जमा करो, फिर मैं अपनी बात कहूगा।"

गाँव के सैकडो स्त्री-पुरुष दार्शनिक संत की अंतिम सीख सुनने को एकत्र हुए।

अफलातू ने कहा—देखो मेरे आज तक के उपदेशो का सार है ये चार बाते —

१ यदि कोई तुम्हारे साथ कभी बुरा बर्ताव करे तो तुरन्त भुला देना चाहिए। इससे तुम क्षमा करना सीखोगे !

२ यदि तुमने किसी की भलाई की हो, उपकार किया हो, तो उसे भी भुला देना चाहिए। इससे जीवन मे उदारता व सरलता आयेगी।

३. जिसने भी जन्म लिया है, उसे एक दिन मरना भी होगा, इस बात को हमेशा याद रखना चाहिए। इससे तुम जीवन मे सदा जागरूक रहोगे।

४. तुम्हारे लिए जो कुछ अच्छा है, और बुरा है, उसको करने वाले तुम स्वय ही हो, अपना भाग्य अपने हाथ में है, इस बात को सदा याद रखना चाहिए। बस यही सब सफलताओ का मूल मत्र है।

लोगो ने उपदेश को सर आँखो पर चढाया, और कहते है उसके बाद अफलातू ने दोनों हाथ ऊँचे उठाकर विदा मागी, वह सचमुच विदा होगया।

आज भुलाने वाली बातो को मनुष्य रट-रट कर याद किये जा रहा है, और याद रखने वाली बाते कब से भूल चुका है ...?

४१

झूठी प्रीत

संसार का स्नेह और प्रेम वास्तव में काच की बोतल के समान है, जो संदेह की जरा-सी ठेस लगते ही टूट जाता है। उस स्नेह में पद-पद पर शंका, भय और अविश्वास के काटे बिछे रहते हैं। स्वार्थ की दुर्गन्ध छिपी रहती है। तथागत बुद्ध ने इसीलिए कहा था—

स वे मित्तो यो परेहि अभेज्जो

—सुत्तनिपात २।१५।३

मित्र और मैत्री की कसौटी यही है कि वह पर—शंका, संदेह आदि से कभी भंग न हो। जो शंका, संदेह एवं अविश्वास की ठोकर में टूट जाती है, वह मैत्री-झूठी है, ज्ञानीजन उस मैत्री पर कभी आश्वस्त नहीं होते!

गुजरात के प्रसिद्ध ओलिया संत अखा, अपने पूर्व जीवन में अहमदाबाद में स्वर्णकार का धंधा करते थे। सुनार की ठगी प्रसिद्ध है, पर उससे भी ज्यादा प्रसिद्ध थी

अखा की ईमानदारी। अपने जीवन में उसने कभी भी किसी के सोने मे कुछ बेईमानी नही की।

एक सद्गृहणी के साथ अखा का बहन जैसा पवित्र स्नेह था। उस वहन ने एक बार अखा को तीन सौ रुपये दिए और एक सुन्दर कठमाला वना देने के लिए कहा।

अखा ने वहन का काम पूरी आत्मीयता के साथ किया, उसमे सौ रुपये का सोना अपनी ओर से भी मिला दिया और सुन्दर कठमाला तैयार कर के बहन को दी।

कंठमाला का वजन अधिक देखकर बहन के मन मे बहम का भूत घुस गया। सोचा, अखा आखिर सुनार ही तो है, हो सकता है इसका वजन बढाने के लिए कुछ और चीज मिलादी हो। वह दूसरे सुनार के पास दौडी गई और कंठमाला के सोने की परीक्षा करवाई।

सुनार ने परीक्षा करके बताया—यह सोना तो विल्कुल शुद्ध है, तुमने कितने मे बनवाई है ?

बहन ने कहा—'मैंने तो अखा को तीन सौ रुपये दिये थे !"

मुनार ने हँसकर कहा-"बावली ! अखा पर भी बहम करती है ? इस मे तो चार सौ रुपये का सोना है, और मजूरी के रुपये अलग !"

वहन को अपने झूठे बहम पर पश्चात्ताप हुआ। वह दौडकर अखा के पास गई और रोती हुई अपनी बात सुनाई। सुनते ही अखा की आँखे खुल गई।

सचमुच यह ससार संदेह और अविश्वास से भरा है। हर बहन-भाई और पति पत्नी का स्नेह संदेह की ठेस से कॉच की बोतल की तरह कब टूट जाये कोई विश्वास नही। जिस बहन के लिए उसने अपनी गाठ के सौ रुपये लगाए, वह बहन भी सोचती है—उसने अवश्य सोने में खोट मिलाई होगी, आखिर सुनार जो है।

उसी दिन अखा घर छोड कर जँगल की ओर चला गया। ससार की झूठी प्रीति तोडकर उसने प्रभु से सच्ची प्रीति लगायी।

४२

मन को मांजो

•

कुछ विचारक कहते है—"मन पापी है, दुष्ट है, इसको मार डालो !" किंतु 'पापी मन को मार डालना-मन का उपचार नही है।' जैनदर्शन कहता है—मन को मारो नही, सुधारो। मैले वस्त्र को फाड कर मत फैंक दो, उसे धोकर उजला बनाओ। ज्ञातासूत्र (१।५) मे भगवान महावीर ने कहा है—"जैसे रक्त से सना वस्त्र पानी से धोने पर उजला हो जाता है, वैसे ही मन को (आत्मा को) शुभ भावनाओ के स्वच्छ जल से प्रति-पल धोते रहने से वह उज्ज्वल हो जाता है।"

इसीविचार को प्रकारान्तर से बौद्ध ग्रन्थ अभिधम्म पिटक मे यो कहा है—

अनुपुब्बेन मेधावी थोकं-थोकं खणे-खणे ।
कम्मारो रजतस्सेव निद्धने मलमत्तनो ॥

जैसे सुनार चाँदी के मैल को धीरे-धीरे साफ करता रहता है, वैसे ही बुद्धिमान साधक आत्मा के मल को, थोडा-थोडा करके साफ करता रहे, जिससे कि मन उज्ज्वल एव निर्मल बन जाय।

साधक को मन को प्रतिक्षण शुभ कामनाओ से निर्मल करते ही रहना चाहिए। यदि उसके प्रति उपेक्षा कर दी गई तो जैसे निकम्मी तलवार जग खा जाती है, और अनुपयोगी वस्त्र पडे-पडे मलिन हो जाते है वैसे ही शुभ-भाव-शून्य मन पाप से भर जाता है।

रामकृष्ण परमहस से एक श्रद्धालु ने पूछा—आप तो पहुँचे हुए योगी है, फिर ध्यान आदि प्रतिदिन करते रहने की क्या जरूरत है ?

परमहस ने अपना कमडलु हाथ मे लेते हुए बताया—'यह कितना साफ है, चमक रहा है न ? क्यो ?' स्वयं ही प्रश्न का समाधान देते हुए आगे कहा—"मैं इसे प्रतिदिन साफ करता रहता हू। यदि एक बार साफ करके रख दू और फिर इसकी सभाल न करूँ तो क्या यह इतना स्वच्छ व चमकदार रह सकता है ? इसीप्रकार आत्मा को जो कि शरीर के साथ रह रहा है,साधना के द्वारा यदि शुद्ध व निर्मल नही किया जाय तो वह भी मलिन हो जाती है। मन को चादी की भाति जितना माजा जाय, उतना ही निर्मल रहता है।"

४३

अपनी छाया

●

एक ऋषि ने मनुष्य की अनन्त सुप्त शक्ति को उद्-बोधित करते हुए कहा है—

विशं विशं मघवा पर्यशायत —ऋग्वेद १०।४३।६

प्रत्येक मनुष्य के भीतर इन्द्र (अनन्त ऐश्वर्य) सोया पडा है। पर मनुष्य है कि वह बाहर ही बाहर ऐश्वर्य की खोज में दौड रहा है।

स्वामी रामकृष्ण ने एक जगह लिखा है—"ऋद्धि और सपत्ति छाया की तरह मनुष्य का अनुगमन करती है। जो मनुष्य छाया को पकडने की चेष्टा करता है, छाया उससे दूर भागती है, जो अपने को पकड लेता है, छाया स्वय उसके अधिकार मे आ जाती है।"

आठवी कक्षा का एक बालक विद्यालय से अपने घर आ रहा था। हाथ में पुस्तको का बस्ता लिए वह चल रहा था और पीछे काफी लम्बी मचलती हुई छाया उसका

अनुगमन कर रही थी। बालक को घूमती-फिरती छाया देखकर आश्चर्य हुआ। वह एक जगह खडा हो गया, छाया भी खडी हो गई। वह एक जगह बैठा, छाया भी बैठ गई। वह दौडने लगा तो छाया भी पीछे-पीछे दौडने लगी। वह छाया को पकडने का प्रयत्न करने लगा, पर छाया तो उसके पीछे खिसक जाती। वह हैरान था, और रास्ते मे ही इधर-उधर पागल जैसे भटकने लगा।

विद्यालय की छुट्टी कर उसका अध्यापक भी उसी रास्ते आ रहा था। बालक का यह पागलपन देखकर उसने पूछा—"रमेश ! क्या कर रहे हो ?"

"सर ! मेरे पीछे यह छाया चल रही है, इसका सर पकडना चाहता हूँ, पर यह हाथ ही नही आ रही है।"

अध्यापक ने बालक को समझाते हुए कहा—'रमेश ! छाया को पकडने के लिए दौडने पर छाया कभी हाथ नही आती। इसे पकडना चाहते हो, तो एक तरीका है।'

"सर ! क्या तरीका है, जल्दी बताइए !"—बालक ने कुतूहलपूर्वक पूछा !

"तुम अपना सिर पकड़कर खड़े हो जाओ !"

बालक ने ज्यो ही अपना सिर पकडा, उसने देखा, छाया ने भी अपना सिर पकड लिया है। वह किलकारी मार कर हंस पडा—'वाह ! सर ! बहुत अच्छा ! अपना सिर पकड़ने से ही छाया का सिर पकड़ मे आ जाता है।'

बालक का यह अनुभव अध्यात्मज्ञानियो का सच्चा जीवन दर्शन है, जिसने अपने आपको पकड लिया, स्वय पर नियन्त्रण कर लिया, छाया की भॉति पीछे-पीछे चलने वाली संसार की समस्त विभूतिया स्वय ही उसके वश में हो जाती है।

४४

जैसी दृष्टि : वैसी सृष्टि

एक प्रसिद्ध सूक्ति है—

अंधकारो अपस्सतं—

(सुत्त निपात ३।३८।४०)

अंधो के लिए चारो ओर अंधकार ही अंधकार है।

कहावत है—सावन के अंधे को सब दुनिया हरी-हरी दीखती है, और पतझड़ के अंधे को दुनिया वीरान लगती है।

जिसने आँखो पर काला चश्मा लगाया है, उसे उज्ज्वल जलधारा भी काली मटमैली दिखाई देगी और जिसकी नजर साफ है, वह हर वस्तु को उसके असली रूप मे देख सकता है।

जिसके मन मे ईर्ष्या, द्वेष एवं घृणा भरी है, उसे संसार मे कही प्रेम, सद्भाव और सद्‌गुण दिखाई नही दे सकता। और जिसका अन्तःकरण स्नेह, सद्भाव एवं

गुणानुराग से छलछला रहा है, उसे कही भी द्वेष, और शत्रुता का दर्शन भी नही हो पाता।

भला सर्वत्र भलाई देखता है, बुरा बुराई। एक संस्कृत सूक्ति है–

सरलः पश्यति सकलं सर्वं सरलेन भावेन।

सरल सब कुछ सरल भाव से सरल ही देखता है, और कुटिल सबको कुटिल मानता है।

महाभारत युग की एक घटना है–श्रीकृष्ण ने एक बार धर्मराज युधिष्ठिर को एक काम सोपा–"धर्मराज ! तुम द्वारिका के समस्त दुर्जनो की एक तालिका बनाकर लाओ !" धर्मराज ने योगेश्वर की आज्ञा शिरोधार्य कर अपना काम प्रारम्भ कर दिया।

उधर दुर्योधन को भी श्रीकृष्ण ने एक आदेश दिया- "नगर के समस्त सज्जनो की सूची तैयार करके लाओ।' और दुर्योधन भी जुटगया अपने कार्य मे।

कुछ दिनो बाद दोनों ही खाली सूची पत्रक लिए श्रीकृष्ण के समक्ष उपस्थित हुए। श्रीकृष्ण ने पूछा— "युधिष्ठिर ! क्या तुमने अपना कार्य पूरा कर लिया ?"

विनय और सकोच के साथ धर्मराज ने कहा–"महाराज ! अब तक तो मुझे ऐसा कोई भी व्यक्ति नही मिला जिसे सचमुच दुर्जन कहा जा सकता हो, मैं देखता हूं, तो हर जन मे सज्जनता के दर्शन होते है, फिर कैसे उसे दुर्जन की सूची मे चढाऊ।"

श्रीकृष्ण ने दुर्योधन की ओर प्रश्न भरी नजर उठाई। दुर्योधन ने क्षोभ प्रकट करते हुए कहा–"महाराज! सज्जनता तो जैसे लुप्त हो गई है। जिसे भी देखता हूँ, ऊपर से सज्जनता और भलाई का आवरण ओढे हजारों लोग दुर्जन की आत्मा लिए घूमते है। फिर किसका नाम सज्जन मे लिखूं और किसका दुर्जन में।..."

दो विपरीत अनुभवो का मूल कारण था, दो विपरीत दृष्टिया। धर्मराज को जिस संसार मे कोई दुर्जन नही मिला, उसी संसार में दुर्योधन की दृष्टि में कोई सज्जन नही था।

४५

बादशाहत का मूल्य

तथागत बुद्ध जब अंतिम महाप्रयाण कर रहे थे तब उपस्थित जन समूह को अपना दिव्यसदेश देते हुए एक वचन कहा—

वयधम्मा संखारा अप्पमादेन सम्पादेथा !

—दीघनिकाय. २।३।२३

संसार में जो भी वस्तुए है वे सब क्षणिक है, नाशवान् है। अत उनपर अहकार एवं आसक्ति न करके अप्रमाद पूर्वक अपना जीवन लक्ष्य साधते रहो।

वास्तव में जो भौतिक वस्तु, वैभव एवं साम्राज्य नाशवान् है, उसका अविनाशी जीवन के लिए क्या मूल्य हो सकता है ? चक्रवर्ती का साम्राज्य भी जब क्षणिक है, तो उसका अहंकार कैसा ? और कैसी उस पर आसक्ति ?

कहते है, अरब के बादशाह हादर रशीद को अपनी बादशाहत का बहुत अभिमान था। उसका अभिमान

हटाने के लिए एक बहुत प्रसिद्ध संत (फकीर) ने एक दिन बादशाह से पूछा–"जहाँपनाह ! यदि कभी आप ऐसे रेगिस्तान में चले जाँय, जहाँ पर मीलो मे न कोई आदमी दिखाई दे और न कही पानी ! मारे प्यास के प्राण निकलने लगे तब कोई आदमी जिसके पास सिर्फ आधा सेर पानी हो, वह आपसे आधा राज्य लेने की शर्त लगा कर पानी पिलाए तो क्या आप वह शर्त मंजूर कर सकते है ?"

बादशाह ने कहा–"उस समय तो जो वह कहे, करना ही पडेगा, प्राणो से बढकर बादशाहत नही है !"

फकीर ने जरा गंभीरता का आवरण हटा कर कहा–"जहाँपनाह ! जो बादशाहत सिर्फ आधा सेर पानी के लिए बिक सकती है, क्या वह कोई अभिमान करने जैसी चीज है ?" गरीबी और अमीरी मे कितना सामान्य अंतर है—सिर्फ एक घंटा की प्यास ! एक गिलास पानी का ।

फकीर की बात पर बादशाह को अपनी भूल महसूस हुई और उसका अभिमान काफूर हो गया ।

४६

शब्द नहीं, भावना

शब्द मिट्टी का दीया है, भावना उसकी ज्योति है। जो ज्योति की अवगणना कर 'दीये' को महत्व देता है, वह चेतन्य की अवमानना कर जड की पूजा करता है।

चेतना के क्षेत्र में, भावना के जगत में शब्द सिर्फ चोला है, तलवार की म्यान है, वहाँ चोले और म्यान का कोई मूल्य नही—

मोल करो तलवार का
पडा रहन दो म्यान!

एक बार राम जब वनवास में घूम रहे थे तो निपादो का राजा 'गुह' उनका भक्त बन गया था। वह न अधिक पढा लिखा था, न वाणी का शिष्टाचार और सुन्दर बाह्याचार का ही उसे ज्ञान था। उसका हृदय सरल, और राम के प्रति अत्यन्त भक्ति-परायण था।

निषादराज कई बार प्रेमातिरेक मे राम को 'तू' शब्द

से पुकारता था। निषादराज का यह असभ्य व्यवहार लक्ष्मण को बहुत अखरता। एक दिन वे क्रोधित हो गये, और उसे पीटने के लिए तैयार हो गए।

राम ने लक्ष्मण को समझाते हुए कहा—'लक्ष्मण ! तू जड़ शब्दो में उलझ रहा है, पर उसकी भावना की मधुर सौरभ को नही पहचान पा रहा है। इसके मुह से प्रेमपूर्वक निकला हुआ 'तू' शब्द मुझे सहस्रो 'आप' शब्दो से भी अधिक प्रिय लगता है। क्या तुम नही देख रहे हो, उसकी भावनाओ में भक्ति और स्नेह की कितनी जबर्दस्त हिलोर है ? यह हिलोर शब्दो मे नही बंध सकती, इसमें भावना का वेग है, तुम उस वेग को समझो !' राम के समझाने पर लक्ष्मण ने शब्दो की पकड से निकल कर भावना के मधुर-मधुर जगत् में झाका तो वे स्वय ही भाव-विभोर हो उठे।

४७

धर्म का गौरव

•

धर्म आत्मा की दिव्यता है, जाति, वर्ण एवं कुल की सीमाए उसके तेज को मंद नही कर सकती।

क्या ऐसा होता है कि ब्राह्मण कुल की अग्नि अधिक तेजस्वी हो, और चडाल कुल की मद ?

क्या ऐसा होता है कि ब्राह्मण कुल का जल अधिक शीतल हो, और चडाल कुल का ऊष्ण ?

नही! तो फिर धर्म में कुल-जाति का भेद क्यो और कैसे हो सकता है ?

जो सदाचार और शील का पालन करे, वही धर्म की आराधना कर सकता है।

भिक्षु आनन्द एक बार श्रावस्ती के राजपथ पर भ्रमण कर रहे थे। भयंकर धूप के कारण मारे प्यास के उनका गला सूख रहा था। एक गृहद्वार पर खड़ी तरुणी की ओर देखकर आनन्द ने पानी की याचना की।

तरुणी ने हाथ मे जल का बर्तन लिया, पर सकुचाते हुए उसने नम्र दृष्टि से भिक्षु की ओर देखकर कहा—"पर, भिक्षु ! मैं चंडाल कन्या हूँ ।" उसके हाथ काप रहे थे ।

आनन्द ने सात्वना के स्वर मे कहा—"सुभगे ! मैंने पानी मागा था, जाति नही पूछी !" और तरुणी ने श्रद्धा के साथ भिक्षु को जल पिलाया ।

चंडाल कन्या आनन्द के समभाव से प्रभावित होकर तथागत के पास आई, उसने ज्ञान प्राप्त किया, और प्रव्रजित हो गई ।

चंडाल कन्या की प्रव्रज्या देखकर श्रावस्ती के उच्च-वर्गीय लोगो में खलबली मच गयी । राजा प्रसेनजित भी कुछ भ्रात और उत्तेजित हुए तथागत के पास आये । तथागत बुद्ध ने उनके हृदय का अंधकार दूर करते हुए कहा—"कोई भी बडा मनुष्य आकाश से नही उतरता, और कोई भी छोटा मनुष्य पाताल से नही निकलता । स्वयं के आचार-विचार से ही सब छोटे बडे बनते है ।" कर्म, विद्या, धर्म, शील और उत्तम जीवन इनसे ही मनुष्य शुद्ध होते हैं, गोत्र और धन से नही । बुद्ध के उपदेश से सब की भ्रांति दूर हट गई ।

—(मज्झिमनिकाय ३।४३।३)

४८

आनन्द का मूल

●

"संसार में सब से अधिक सुखी व आनन्दित कौन है ?"—एक विद्वद्सभा में प्रश्न उठा, और हवा में तैरने लगा।

किसी ने कहा—संतोषी !

किसी ने कहा—सत्यवादी ! और किसी ने भक्त, निस्पृह सत और किसी ने दयालु बादशाह को सबसे अधिक सुखी बताया, पर विद्वानो के तर्क-तूणीरो ने इन सब समाधानो के अन्तरतम को भेद कर रख दिया। प्रश्न असमाहित ही खडा रहा—"सब से बडा सुखी कौन है ?"

एक वृद्ध ने कहा—मैंने एक दिन एक नदी के तट पर मखमली घास पर एक अबोध शिशु को खेलते देखा, हवा के हल्के-हल्के हिलोरो से वृक्ष का कोई छोटा-सा पत्ता गिरकर उसके पास आ जाता तो शिशु उसे देख कर

आनदित हो उठता, कोई चिडिया चहकती तो शिशु किलक उठता, एक छोटा-सा बकरी का वच्चा सामने आया तो शिशु उसे देखकर आनद से ललक उठा—वृद्ध ने विद्वानो को ओर प्रश्न भरी नजर से देखा—"वतलाइए उस शिशु के आनद का कारण क्या है ?"

यदि ज्ञान से आनद प्राप्त होता है तो शिशु तो निरा अबोध था, उसे कुछ भी ज्ञान नही, उसके पास कोई सत्कर्म भी नही। वह गुलाब के फूल को देखकर भी आनदित हो रहा था और नीम के पत्तो को हिलता देख कर भी। उसकी आनंद सृष्टि का मूल क्या है ? वह पानी में सरसराती मछली को दौडती देखकर भी किलक उठता और विषधर भुजंग को आते देख कर भी आनंद से मचलने लगता। आखिर उसके निर्मल आनद का उत्स कहाँ था ?"

सभा मे स्तब्धता छा गई, बालक के आनंद के मूल तक किसी की सूक्ष्मदृष्टि नही पहुँची।

वृद्ध ने अपनी अनुभवी वाणी मे कहा—"बालक की आनन्दानुभूति का मूल स्रोत यही है कि उसकी अपनी कोई कल्पना नही, उसका हृदय निर्मल एवं पवित्र था, फूल और कांटा, मछली और विषधर मे वह कोई अन्तर नही देखता. उसकी अन्तर सृष्टि सर्वथा वीतराग थी, स्नेह एवं आनंद की लहरियां उसके हृदय मे उठती थी

और उन्ही का प्रतिबिम्ब वह समस्त जगत में देखता था। बस—शिशु सा निर्मल, निराग्रह हृदय ही आनंद एवं सुख का मूल केन्द्र है।"

४९

दिल का आईना–आँख

आँख—दिल का आईना है। मन की गहराई में जो भावो की रग-विरंगी तरगे उछलती हैं, आँखे उनका स्पष्ट प्रतिबिम्ब प्रकट कर देती है। लज्जास्पद बात देखते ही वे झुक जाती है, आनन्द का अनुभव करते ही चमक उठती है। रोष का उदय हुआ नही कि वे लाल अगारे-सी हो कर जल उठती है, और करुणा का उद्रेक होते ही नम होकर बरस पडती है। जो बात वाणी नही प्रकट कर सकती, वह बात आँखे प्रकट कर देती है।

महाभारत मे एक कथा है–व्यास जी के पुत्र शुकदेव बारह वर्ष के नही हुए कि तपस्या करने जगल की ओर चल पडे। वे निर्वस्त्र ही थे। मार्ग मे एक तालाब पर अप्सराएं वस्त्र उतार कर नहा रही थी, शुकदेव को देख-कर भी वैसे ही नहाती रही।

शुकदेव के पीछे व्यास जी दौडे जा रहे थे, उसे मनाने

के लिए। व्यासजी को देखते ही अप्सराएं सकुचा कर वस्त्र पहनने लगी। आश्चर्यपूर्वक व्यासजी ने कहा—अभी-अभी मेरा तरुण पुत्र इधर से निकला तब तो तुम्हे बिल्कुल ही शर्म नही आई, और मुझ ब्रह्मज्ञानी वृद्ध को देखकर शर्म कर रही हो… ?

अप्सराएं विनय के साथ बोली—महर्षे! शुकदेव तरुण होते हुए भी उसकी आँखो मे एक अबोध शिशु की भाति भोलापन था, उसे देखकर हमे भान भी नही हुआ कि कोई पुरुष हमारे सामने से गुजर रहा है, किंतु आपकी आखो में न वैसा भोलापन था न अबोधता! आप को देखते ही हमारी आँखे शर्म से स्वयं झुक जाती है।

सचमुच ही आँखे मनुष्य के हृदय का दर्पण होती है।

आँखो मे हृदय के भाव कितनी तीव्रता से स्पदित होते हैं और मन व चरित्र पर कितना प्रभाव डालते हैं इसका उदाहरण है लन्दन से प्रकाशित 'प्रेडिक्शन' पत्रिका की इस रोचक घटना में—

फ्रास के 'सैनटी-सर्मा' नामक गांव मे एक जैनेट नामक लडकी जन्माध थी। वह स्वभाव से बडी सरल, सुशील और मधुर थी। १६ वर्ष की अवस्था मे एक जेटानी नामक डाक्टर ने उसका आप्रेशन कर 'आँखबैंक' पेरिस से दूसरी आँखें मगवाकर लगा दी।

दूसरी आँखे लगने के बाद लडकी के स्वभाव में विचित्र परिवर्तन हो गया। वह बडी क्रूर, झगडालू और

निर्दय बन गई। एक-दो बार तो उसने आत्महत्या का भी प्रयत्न किया। डाक्टरो के समझाने पर उसने बताया कि उसे लोगो से नफरत हो रही है। लोगो की आँखे उसे घूरती-सी लगती है। लडकी के स्वभाव मे विचित्र परिवर्तन देखकर डाक्टरो को आश्चर्य हुआ। उन्होने पेरिस आँख-बैंक से पत्र व्यवहार कर पता लगाया कि वे आँखे किस व्यक्ति की थी! बहुत छान-बीन के वाद पता चला कि—एक हत्या के अभियुक्त, जिसे फाँसी की सजा दी गई थी उसने स्वेच्छापूर्वक अपनी आँखे बैंक को दान कर दी थी, वे ही आँखे लडकी को लगाई गई है।

डाक्टरो को भी अत्यंत आश्चर्य हुआ कि एक व्यक्ति की आँखे अन्य व्यक्ति को लगाने पर उसकी मनोवृत्तियो पर उनका कितना गहरा असर पडता है।

जैन दर्शन ने इसीलिए तो मन संयम के साथ चक्षु-संयम की वात कही है। मन को पवित्र रखने से ही आँखे पवित्र रह सकती है। दूषित मन की आँखे भी दूषित ही होगी और पवित्र मन की आँखे भी पवित्र! तीर्थङ्करो की करुणा-स्निग्ध आँखो को देखकर हिंसक मानव और हिंसक पशु भी दयालु और सरल बन जाते है। आँखो का यही चमत्कार है।

५०

ज्ञानी का धीरज

●

संकट, आपत्ति और विनाश की काली घटाएं जब घहर-घहर कर जीवन पथ को अन्धकार मय बना देती है, सुख, प्रसन्नता और आनन्द की प्रकाश किरणो को ढक देती है, तब वह कौन-सा दीपक है जो अपना क्षीण प्रकाश देकर भी मनुष्य के मन को आलोक देता है, विपत्ति के गर्त मे झूलते हुए को सहारा देकर थामे रखता है, वह कौन सा सहारा है ? वह है—ज्ञान, विवेक । धैर्य !

कभी- कभी जीवन में ऐसे भूचाल आते है, कि मनुष्य सहसा अपने वर्षो के श्रम की उपलब्धियो से हाथ धो बैठता है। जीवन भर की उपलब्धि क्षण भर में नष्ट हो जाती है, ऐसी विकट वेला में मनुष्य का विवेक, एव संयम क्षत विक्षत होना सहज है, पर कुछ महान विवेक-शाली एवं कर्तव्यनिष्ठ व्यक्ति होते है, जो इन आघातो को भी प्रकृति का उपहार मानकर स्वीकार कर लेते है, और उसी साहस के साथ पुन. अपनी साधना में जुट

जाते है।

प्रसिद्ध वैज्ञानिक सर आइजक न्यूटन के जीवन का प्रसंग है। किसी प्रयोग के सिलसिले मे न्यूटन ने वरसो से एक यत्र के कुछ आकडो का एक ग्राफ बनाकर रख छोडा था। यह ग्राफ-कागज प्रयोगशाला मे यंत्र के पास ही रखा रहता था। कई साल पुराना होने के कारण ग्राफ-कागज मैला हो गया था और उस पर धब्बे भी पड गये थे।

एकबार पुराना नौकर छुट्टी पर चला गया, नया नौकर प्रयोगशाला मे सफाई कर रहा था। नौकर की नजर उस मैले पुराने कागज पर गई, उसने सोचा—मालिक को शायद नया कागज निकालकर काम लेने की फुर्सत न मिली हो, अत उसने उस पुराने कागज को फाडकर रद्दी की टोकरी में डाल दिया और नया कागज वहाँ रख दिया।

इधर प्रयोगशाला मे न्यूटन पहुँचे। यत्र के पास नया कागज देखकर चकित हुए! फिर पुराना कागज खोजने पर दिखाई नही दिया तो नौकर को बुलाकर पूछा—यहाँ का कागज कहाँ गया?

"पुराना हो गया था, इसलिए फाडकर रद्दी की टोकरी मे डाल दिया ⋯ साहब!"

न्यूटन क्षण भर विमूढ से–खडे रहे। हताश-निराश हो सिर पकडकर वही बैठ गये। वर्षो का परिश्रम अन-

जान नौकर ने रद्दी की टोकरी में डाल दिया। वे पसीने से तर-बतर हो रहे थे। पर कुछ क्षण बाद ही अपने आपको संभाल लिया न्यूटन ने। धैर्य टूटने नही दिया, पुन प्रयोगशाला में उठकर बैठ गये और आँकड़ो का दूसरा ग्राफ बनाने में जुट गये!

यह है विवेकी मानस का धैर्य! इतनी विकट घडियो में भी उसने अपने विवेक को जगाये रखा, और मानसिक सतुलन विगडने नही दिया।

प्रसिद्ध लेखक कारलाइल के जीवन में भी कुछ ऐसी ही घटना घटी। फ्रेंच-राज्यक्रान्ति के सम्बन्ध मे उसने एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखा, अनेक दुर्लभ पत्र व आँकडे उसमे सकलित किये थे। उसकी पांडुलिपि अपने एक मित्र के पास देखने को भेजी। मित्र की असावधानी से पाडुलिपि को नौकर ने रद्दी मे बेच डाला और रद्दी वाले ने उसे जला डाली।

कारलाइल इस घटना से कुछ देर हतप्रभ-सा रह गया। पर चुपचाप घर लौटकर उसने अपनी स्मृति को स्थिर किया और पुनः वह ग्रन्थ लिखने में जुट पड़ा।

५१

वीर और उदार

•

एक जिज्ञासु ने किसी विद्वान् से पूछा—उदारता और वीरता—इन दोनो मे किसका महत्त्व अधिक है ?

विद्वान् ने कहा—जिसमे उदारता है, उसे वीरता की जरूरत ही क्या है ?

जिज्ञासु का समाधान नही हुआ। वह विद्वान् के मुह की ओर ताकता रहा। विद्वान् ने कहा—युधिष्ठिर, अर्जुन, दुर्योधन और कर्ण मे तुम प्रातःकाल किसका नाम सबसे पहले लोगे ?

जिज्ञासु–कर्ण का ?

विद्वान्—क्यो ? क्या वह सबसे बड़ा वीर था ?

जिज्ञासु—"नही ! वीरता नही किंतु दानशीलता में संसार में उसकी जोडी का कोई दूसरा नही हुआ !" और जिज्ञासु अपने ही मुह से अपना समाधान पाकर संतुष्ट हो गया।

दान व उदारता की महिमा गाते हुए तथागत बुद्ध ने कहा है—

दिन्नं होति सुनीहतं

—अगुत्तर निकाय ३।६।२

दिया हुआ चिरकाल तक सुरक्षित रहता है।

ऋग्वेद के ऋषियो ने कहा है—

दक्षिणावंतो अमृतं भजन्ते

—ऋग्वेद १।१२५।६

देने वाला अमरपद प्राप्त करता है। वास्तव मे जिसने दिया उसी ने कुछ किया

ससार वीरो को नही किंतु, दानियो को याद करता है। दानी वीरो का भी पोषण करता है, इसलिए वीर भी दानी को ही श्रेष्ठ समझते है।

५२

निस्पृहता का अभ्यास

मन में यदि तृष्णा नही हो, तो जगत् का कोई भी पदार्थ चाहे वह सोना हो या मिट्टी—एक समान प्रतीत होता है। समत्वभाव की यह साधना ही निस्पृहता की कसौटी है। इसीलिए साधक का यह विशेषण आगमो मे आया है—

सम लेट्ठु-कंचणो भिक्खु

—उत्त० ३५।१३

भिक्षु सोने में और पत्थर मे समान बुद्धि रखता है।

योगी की परिभाषा करते हुए यही बात गीता मे दुहराई गई है—

समलोष्टाश्मकांचनः

—गीता १४।२४

रामकृष्ण परमहंस के जीवन की एक घटना है। जब वे साधना काल मे ध्यान एवं भक्ति मे लीन रहते थे तो

गंगा के किनारे बैठ कर एक हाथ मे रुपया (चाँदी का सिक्का) लेते और एक हाथ मे गंगा की मिट्टी। मिट्टी को हाथ में लेकर कहते—यह मिट्टी है, यह अन्न पैदा कर संसार को देती है, जगत् का पालन करती है। दूसरे हाथ मे रुपया लेकर कहते—यह टाका है, इससे लोग अन्न खरीदते है। पर यह अन्न पैदा नही कर सकता। और फिर दोनो को समान भाव से कहते—'मिट्टी-टाका' 'टाका-मिट्टी' मिट्टी और टाका में कोई भेद नही। मिट्टी टाका समान है।

लोग परमहंस से इस प्रकार के जाप का कारण पूछते, तो परमहंस ने कहा—मिट्टी और टाका मे भेद नही देखना यही तो मन की समवृत्ति है और इस समवृत्ति की साधना के लिए मन से दोनो के भेद की कल्पना मिटनी चाहिए। यह भेद कल्पना मिट गई कि निस्पृहता का अभ्यास सध गया।"

वास्तव मे साधक के मन की इतनी ऊंची स्थिति बने कि वह सोना और मिट्टी, मिट्टी और टाका मे कोई भेद अनुभव न करे, मिट्टी के स्पर्श में जो सामान्य मन स्थिति रहती है, सोने और रुपये के स्पर्श मे भी उसी प्रकार की सामान्य स्थिति बनी रहे–तो निस्पृहता का सच्चा अभ्यास हुआ समझना चाहिए।

५३

आग्रह

ग्रह' मनुष्य के लिए इष्ट भी होते है और अनिष्ट भी, किंतु 'आग्रह' तो सदा अनिष्ट ही होता है। आग्रह–से सत्य का द्वार बन्द हो जाता है। आग्रही बुद्धि–सत्य को सत्य रूप में नही, किंतु अपनी पूर्वबद्ध धारणा के अनुकूल बनाने का प्रयत्न करता है।

यदि किसी सुआँखे व्यक्ति की देखी हुई वस्तु को जन्माध व्यक्ति नकारने लगे तो इसका अर्थ यह नही कि सुआँखा व्यक्ति झूठा है—

नाऽन्धाऽदृष्ट्या चक्षुष्मतामनुपलम्भः

सांख्य दर्शन १।१५६

इसी प्रकार आग्रही यदि किसी सत्य को नकारता है तो उसके नकार मात्र से सत्य का अस्तित्व लुप्त नही हो जाता।

राजस्थान मे एक लोककथा प्रसिद्ध है। एक गाँव मे

कुछ व्यक्ति चौपाल मे बैठे गपशप कर रहे थे। एक जाट ने शर्त लगाई "कि यदि कोई व्यक्ति पचास और पचास का जोड सौ सिद्ध करदे तो मैं अपनी भैंस उसे दे दूगा।"

जाट ने घर पहुँचकर जाटनी के सामने अपनी शर्त बताते हुए मूछो पर वल लगाया, तो जाटनी ने घबडा कर कहा-कैसी पागलपन की बात करते हो, पचास और पचास तो सौ होते ही है। भैंस देकर क्या मेरे बच्चो को भूखो मारोगे ?"

जाट ने हसते हुए कहा—घबराओ मत ! पचास और पचास सौ होता है यह तो मैं भी जानता हूं, किंतु मै किसी के सामने इसे स्वीकार करूगा तभी तो ? मैं 'ना-ना' ही कहता रहा तो शर्त हार कैसे जाऊगा।"

वास्तव मे आग्रही व्यक्ति जब सत्य को 'सत्य' समझ कर भी उसको अस्वीकार करता जाये तो उसे फिर कौन समझाए ?

५४

सोने का झोल

•

एक पादरी महोदय ने नगर के प्रसिद्ध श्रीमंत यहूदी को ईसाई बनाने के विचार से उन्हे चर्च मे बुलाया। थोडी देर बातचीत की और प्रभु ईसा का नाम सुनाकर यहूदी के शरीर पर तीन बार पानी के छींटे डाले। पादरी ने कहा—अब तुम ईसाई बन गये हो, पवित्र दिन (साबाथ के दिन) मे कभी भी मॉस मत खाना।

यहूदी ने पादरी की बाते सुनी और चुपचाप अपने घर चला आया।

साबाथ के दिन पादरी ने सोचा-"चलकर देखना चाहिए कि वह व्यक्ति सचमुच मेरे कहने पर अमल करता है या नही।" पादरी ठीक भोजन के समय पर उसके घर पहुँचा और वह देखकर हैरान रहगया किआज भी उसकी टेबल पर मॉस रखा हुआ है।

पादरी ने कहा—"तुम्हे याद नही रहा, आज के

पवित्र दिन में मॉसाहार करने की मना की थी न ?"

यहूदी ने कहा—"मुझे याद है। किंतु इसे तो मैंने तीन बार पानी के छीटे डालकर बेजिटेबल बना लिया है।"

पादरी बडी हैरत से उसे देखने लगा-"ऐसा नही हो सकता, कितना भी पानी छीटो, मॉस तो मॉस ही रहेगा।"

यहूदी ने तीखी मुस्कराहट के साथ पादरी की आँखो मे आँखे डाली—"फिर पानी के छीटे देने से यहूदी ईसाई कैसे हो सकता है ?"

पादरी के पास इस बात का कोई जबाब नही था।

वास्तव में धर्म ऊपर से नही थोपा जाता, वह तो हृदय से जन्म लेना चाहिए। एक जैनाचार्य के शब्दो में-

वण्णेण जुत्तिसुवण्णगं व असइ गुणनिहिम्मि-

दशवै. निर्युक्ति ३५६

सोने का झोल चढा देने से पीतल कभी सोना नही हो सकता। वैसे ही केवल धार्मिक मत या पथ बदल लेने से व्यक्ति धार्मिक नही होता। धार्मिकता हृदय से जगनी चाहिए।

५५

क्या गोरा, क्या काला

●

अगरबत्ती दीखने में काली है, पर उसका करण-करण मधुर सुगन्ध से महकता रहता है।

कपास का फूल—दीखने मे दूध - सा उजला है, पर कही सुगध का एक करण भी उसमे नही है !

अपनी सुगध के कारण अगरबत्ती पूजा के समय घर-घर मे जलाई जाती है।

इसी प्रकार जिस व्यक्ति में गुण है, स्नेह एवं सद्-भाव है, उसकी चमड़ी चाहे काली हो, या गोरी, वह सर्वत्र सम्मान एव आदर प्राप्त करता है।

ऋषि अष्टावक्र ने तो एक बार महाराज जनक के राज पडितो को ललकार कर कहा था—"चमडी को देखनेवाला चमार होता है, आत्मा को देखनेवाला ज्ञानी !"

भगवान महावीर ने तो यहाँ तक कह दिया—

सक्खं खु दीसई तवो विसेसो
न दीसई जाइ विसेस कोइ।

संसार में तप (साधना) की विशेषता ही प्रत्यक्ष दीख रही है, जाति, वर्ण एवं रंग की कोई विशेषता नही है।

भारतीय नीति का सूत्र है—चंडाल से भी धर्म का श्रेष्ठ तत्त्व ग्रहण कर लेना चाहिए।—

अन्त्यादपि परं धर्मं

—मनुस्मृति २।२३८

और इस नीति सूत्र को आगे बढाते हुए आचार्य सोमदेव कहते है—"**पुरुषाकारोपेतः पाषाणोऽपि नाव-मंतव्यः किं पुनर्मनुष्यः**"—मनुष्य का रूप धारण किए पत्थर का भी सम्मान करना चाहिए, फिर मनुष्य—चाहे गोरा हो या काला, चडाल हो या ब्राह्मण उसका अप-मान क्यो किया जाय? उसका सम्मान कर उसके गुण ग्रहण करना चाहिए।

बात है कुछ पुरानी, अमेरिका के स्वतंत्रता के जन्म दाता जार्ज वाशिगटन के जीवन की।

वाशिंगटन एक बार अपने मित्रो के साथ घोडे पर सवार हुए कही घूमने को निकले। रास्ते मे एक हब्शी (काला आदमी) उधर से आता हुआ रुक गया। वाशिग-

टन को देखकर उसने अपनी टोपी उतार कर उनका अभिवादन किया। उत्तर मे जार्ज वाशिंगटन ने भी सिर झुकाकर शिष्टता के साथ उसका प्रणाम स्वीकार किया।

जार्ज के साथी गोरी चमड़ी वाले थे, वे कालो से नफरत करते थे। गोरा कुत्ता उनकी बैठक मे आ सकता था, पर काला आदमी उनके घर की देहली पर नही चढ सकता। जार्ज से बोले—"एक काले आदमी के प्रति इतना सम्मान प्रदर्शित करना आपके पद के अनुरूप नही है।"

जार्ज वाशिगटन ने हँसते हुए अपने मित्रो की ओर देखा—"आप जिसे असभ्य मानते हैं, वह आदमी जब इतनी सभ्यता दिखाता है तो क्या मैं उससे भी नीचा, गया वीता साबित हो जाऊँ ?"

"उच्चता और नीचता का मापदड, क्या गोरी काली चमडी ही है ?" मित्रो के पास इसका कोई उत्तर नही था !

५६

मित्र बनाकर

●

कटुता से कटुता नही मिट सकती, वैर से वैर शात नही हो सकता। अग्नि से अग्नि नही बुझ सकती !

भगवान महावीर से जब पूछा गया–"क्रोध को विजय कैसे करे ?" तो उन्होने बताया—'क्षमा' से !—

उवसमेण हणे कोहं

—दशवै० ८

उपशम से क्रोध को जीतो।

जब तथागत बुद्ध से पूछा गया–शत्रुता को, वैर विरोध को मिटाने का उपाय क्या है ? तो वही प्रतिध्वनि फिर गूजी–अवैर से वैर को जीतो—

अवेरेण च सम्मंती

—धम्मपद १।५

अवैर से ही वैर शात होता है।

महापुरुषो की यह वाणी जीवन और जगत का शाश्वत नियम रही है। देश-काल की सीमाओ से परे प्रत्येक उदात्त जीवन मे प्रतिविम्वित होती रही है।

राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन के जीवन का प्रसग है। वे अपने मित्रो के प्रति जितने विनम्र एव मधुर थे, शत्रुओ के प्रति भी उतने ही उदार एव सहृदय थे। अनेकबार अपने शत्रुओ को वे मित्र की तरह घर पर बुलाते, उनके साथ बातचीत करते और वडा ही स्नेह प्रदर्शित करते।

लिंकन की यह नीति और व्यवहार उनके मित्रो को पसन्द नही आई। एकबार एक मित्र ने झुझला कर लिंकन से कहा—"आप अपने शत्रुओ के साथ मित्र की तरह व्यवहार क्यो करते है, इन्हे तो खत्म कर डालना चाहिए।"

मधुर मुस्कान के साथ लिंकन ने उत्तर दिया—'मैं तो तुम्हारी बात पर ही चल रहा हूँ, शत्रुओ को खत्म करने मे ही लगा हूँ।' हा, तुम उन्हे जान से मार डालने की वात सोचते हो, और मैं उन्हे मित्र बनाकर !

शत्रुता को मित्रता मे बदलने का, कटुता को मधुरता मे वदलने का कितना सुन्दर तरीका था यह !

५७

रावण की सीख

•
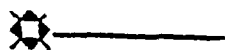
जब रणक्षेत्र में पडा रावण अतिम सांसे गिन रहा था, तब श्री राम ने लक्ष्मण को सकेत किया—"लक्ष्मण ! रावण जैसा ज्ञानी और राजनीतिज्ञ जा रहा है, उससे बहुत कुछ सीखने जैसा है, जाओ, उसके अनुभव पूछो !"

रावण जैसे आततायी और दुष्ट से शिक्षा लेने की बात, लक्ष्मण को असह्य थी, पर श्री राम की आज्ञा का अनादर भी कैसे करते। अनमने भाव से वे रावण के निकट गये। सिरहाने की ओर खडे होकर उन्होने रावण से अपने अनुभवो की सीख सुनाने को कहा।

भूमिपर पडे सिसकते रावण ने लक्ष्मण की ओर देखा भी नही। क्षुब्ध हो, लक्ष्मण लौट आये। लक्ष्मण को निराश लोटे देखकर श्री राम ने कहा—"अनुज ! लगता है तुम ने लंकेश के सिरहाने खड़े होकर सीख लेना चाहा है। बंधु ! सीख तो नम्र और विनयी बनकर ही प्राप्त की

जा सकती है । कोई चाहे जितना महान हो, लेने के लिए तो झुकना ही पडता है, देखते हो, समुद्र भी नदी नालो से पानी लेने के लिए उनसे नीचे ही रहता है ।"

लक्ष्मण अपनी भूल समझ गए, अब वे विद्यार्थी की भाति रावण के पास गये और पाँवो की ओर खड़े होकर विनम्र स्वर में बोले—"लंकेश ! मैं आपसे कुछ सीखने आया हूँ। अपने जीवन के बहुमूल्य अनुभवो से कुछ शिक्षा दीजिए ।"

वेदना से कराहते हुए रावण के मुख पर एक मधुर-स्मित रेखा खिंच गई। फिर गंभीर होकर बोला—"मैं अब क्या सीख दूं, अपने ज्ञान एवं अनुभवो से स्वयं को भी सुखी नही बना सका, तो दूसरो को क्या कहूँ। सीता अपहरण की एक ही भूल ने मेरे समस्त गौरव को मिट्टी मे मिला दिया और जीवन के समस्त सुकृत्यो पर पानी फेर दिया। फिर भी मुझे पूछते हो, तो लो, सौमित्र ! ये तीन बाते हृदय पटल पर अकित करलो—

१ शुभ कार्य करने में पल भर का भी विलम्ब नही करना चाहिए।

२. क्रोध और अहकार के वश होकर कोई कार्य नही करना चाहिए।

३. दुष्कृत्य करने से पूर्व भी गुणिजनो की अनुमति लेना चाहिए।

मुझ से जीवन मे ये ही तीन भूले हुई। शुभ कार्य कल

पर टालता रहा। क्रोधावेश में अपने छोटे भाई को भी खदेड दिया। सीता-हरण जैसा दुष्कृत्य गुणीजनो की सम्मति लिए विना सहसा कर डाला। कहते-कहते रावण ने एक सिहरन के साथ आँखे फेर ली।*

रावण की इन शिक्षाओ के प्रकाश मे देखिए महा-पुरुषो के ये शिक्षावचन—

भगवान महावीर ने गौतम से बार-बार कहा—

समयं गौयम ! मा पमायए —उत्त० १०।१

गौतम ! समय मात्र भी प्रमाद मत कर।

जे छेय से विप्पमायं न कुज्जा

—आचा० १।१४।१

चतुर वही है, जो कभी शुभकृत्य मे प्रमाद न करे और देखिए तथागत का यह वचन—

ञाति मित्ता सुहज्जा च परिवज्जंति कोधनं

—अगुत्तर निकाय ७।६।११

क्रोधी को, ज्ञातिजन, मित्र, और सुहृद् सभी छोड देते है। और महाकवि भारवि की यह सूक्ति—

सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदापदम्

जल्दबाजी मे कोई भी कार्य मत करो, अविवेकपूर्ण क्रिया से अनेक आपत्तियाँ खडी हो सकती हैं।

---

* वैदिक ग्रन्थो के आधार से।

५८
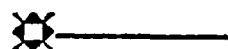
निंदा की लाज

●

'निंदा' दो अक्षर का वह विष है, जो मनुष्य के ज्ञान और चरित्र को कलुषित कर उसकी यश-देह को नष्ट कर डालता है। निदा करनेवाला—चाहे विद्वान् है, तब भी शास्त्रो मे उसे मूर्ख, अज्ञान कहा है। निदक का चरित्र तो अच्छा हो ही नही सकता। भगवान महावीर ने कहा है—

अन्नं जणं खिसति बालपन्ने

—सूत्र १।१३।१४

अपनी प्रज्ञा आदि के अहकार मे दूसरो की अवज्ञा और निंदा करनेवाला सचमुख मूर्ख-वुद्धि है।

और निदा सुनकर जो व्यक्ति अपना धैर्य खो बैठता है, शास्त्रो की भाषा में वह भी वाल है, अज्ञानी है,

कोई वच्चा यदि किसी राह चलते सज्जन पर थूक दे, तो क्या वह सज्जन आदमी भी उस पर थूकने की

चेष्टा करेगा ? नही ! ऐसा करने में सज्जन की सज्जनता को लाज आती है।

जब विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर को नोबल पुरस्कार मिला और उनकी शुभ्रकीर्ति अन्तर्राष्ट्रीय क्षितिजो को छूने लगी तो कुछ महानुभावो के लिए वह भयंकर व्यथा की तरह असह्य हो गई। वे रविबाबू से जलते थे, और अन्तर की कलुषित भावनाओं को पत्र-पत्रिकाओ के द्वारा विखेरते भी थे। उनकी कटु आलोचनाओ को रविबाबू सदा शात एवं प्रसन्न होकर सहन करते।

एकबार उपन्यास सम्राट् शरच्चन्द्र से जब वे कटु-आक्षेप असह्य हो उठे तो उन्होने विश्वकवि से उनका जोरदार प्रतिवाद करने के लिए कहा। इस पर रविठाकुर मुस्कराकर बोले—उपाय क्या है शरत्‌बाबू ! जिस शस्त्र को लेकर वे लोग लडाई करते है, उस शास्त्र को मैं तो छू भी नही सकता।

बात चीत के प्रसंग मे एकबार पुन विश्वकवि ने कहा—मै जिसकी प्रसशा नही कर सकता उसकी निदा करने मे भी मुझे लाज लगती है।*

यही है सज्जनता का निर्मलरूप !

---

* शरद निवन्धावली (पृ० १२७) हि० ग्र० र० वम्वई मे प्रकाशित।

५९

विलास का विष

•

नीतिज्ञ विदुर ने कहा है—

षड्दोषाः पुरुषेणेह हातव्या भूतिमिच्छता ।
निद्रा, तन्द्रा, भयं क्रोध आलस्यं दीर्घसूत्रता ।

—महाभारत उद्योग० ३३।७८

ऐश्वर्य चाहने वाले पुरुष को निद्रा, तन्द्रा (ऊंघना) भय, क्रोध, आलस्य और दीर्घ सूत्रता—इन छह दुर्गुणो को छोडना चाहिए ।

वास्तव मे ये छह दुर्गुण ही मानव जाति के विनाश, पतन एव दुर्गति के कारण बने है ।

इन छहो दुर्गुणो की एक जननी है—विलासिता ! विलास, भोग और आसक्ति मे फंसा मनुष्य, अपने हित से लापरवाह हो जाता है, प्रकृति से चिडचिड़ा, भयभीत एवं आलसी बन जाता है । इतिहास बताता है, विलास का विष जिस राजा और प्रजा के जीवन मे घुला, वह

निस्तेज एवं निर्वीर्य बनकर अपना अस्तित्व भी खो बैठे है।

भारत में हिन्दू राष्ट्र व राजाओ के पतन का और विदेशी आततायि-शक्तियो के चंगुल में फसने का और क्या कारण था-सिवाय इस के? और क्या कारण था मुगलशाही के सर्वनाश का ?

दिल्ली के सिहासन पर जब मुहम्मदशाह रंगीले का शासन था, तो दिल्ली विलासिता की बाढ में आकठ डूब रही थी। बादशाह के सामने रात-दिन शराब का दौर, सुदरियो की पायल की छम-छमाछम चलती रहती ! वह जनता के सुख-दुख से वेपरवाह होकर बस रंगरेलियो मे मस्त रहता।

दिल्ली को इस प्रकार विलासिता मे डूबी देख कर नादिरशाह ने भारत पर आक्रमण किया। जब लाहौर से नादिरशाह के आक्रमण की सूचना दिल्ली पहुँची तो मुहम्मदशाह शराब पीकर बेहोश हो रहा था। गाना-बजाना और नाचना—बस इसी दौर में मदमस्त शाह से एक दरबारी ने आक्रमण की सूचना पर मजाक करते हुए कहा-"हजूर! असल बात तो यह है कि लाहोर वालो के मकान इतने ऊँचे है कि उन्हे दूसरे मुल्क की लडाई भी अपने नजदीक मे दिखाई देती है। दर असल कोई नादिरशाह-बादिरशाह इतनी हिम्मत नही कर सकता जो हजूर जैसे शाह का सामना कर सके।"

एक गायक ने कहा-"यदि नादिर आ भी गया तो

एक ऐसी बहरे-त्तवील(मधुर सगीत) गाऊँगा कि बेहोश न हो जाय।" जी-हजूरियो की मीठी बाते और शराब की मस्ती मे छके मुहम्मद ने आक्रमण की सूचना को मजाक मे उडादिया। और कुछ ही दिनो में नादिरशाह दिल्ली पर चढ आया। मुहम्मद उसके हाथो कैद मे सियार की तरह बद करके डाल दिया गया।

विलासिता का यही विषेला परिणाम आता है।

६०

माता की प्रतिकृति

●

धर्मसूत्रकार मनु ने माता को पृथ्वी की प्रतिमूर्ति माना है—

माता पृथिव्या मूर्तिरतु

मनुस्मृति २।२२६

पृथ्वी—भूमि के रस एवं गध का मानव शरीर पर सबसे अधिक प्रभाव रहता है, जैसे शरीर निर्माण में भौतिक-पिड का प्रमुख हाथ होता है, वैसे ही मानव के शरीर एव मानस की रचना मे माता का सबसे मुख्य एवं प्रभावशाली हाथ रहता है। जैनसूत्रो ने इसीलिए माता को—**'देव–गुरु–जणणी'** और ''रयणकुच्छि' रत्नकुक्षि कहकर सस्तुति की है। इसीलिए तो हजार पिता से बढकर एक माता को माना गया है-**सहस्रं तु पितॄन् माता**।

धर्मशास्त्र, और शरीर विज्ञान इस बारे मे एकमत है कि माँ के चरित्र का, उसके मानस गुणो का सतान पर

सब से गहरा प्रतिबिम्ब पडता है। सतान सचमुच माँ की प्रतिकृति होती है। लीजिए इस सम्बन्ध मे इतिहास के दो भिन्न-भिन्न पक्षो का निदर्शन !

गुजरात के एक राजा ने अपने राजपडित को बुला-कर कहा—"हमारा राजकुमार अत्यत मेधावी है, इसे शिक्षित कर सिद्धराज जैसा योग्य शासक बनाइए।"

राजपडित ने निवेदन किया—"महाराज ! शिक्षा के द्वारा सिद्धराज जैसा सदाचारी, वीर एव कुशल शासक बनाया तो जा सकता है, पर तभी जब उसकी माता मे भी सिद्धराज की जननी जैसे गुण विद्यमान हो।" राजा के पूछने पर राज पडित ने बताया—सिद्धराज जब अबोध बालक था, तो पालने मे सो रहा था, उसकी माता पालना झुला रही थी, कि सिद्धराज के पिता वनराज चावडा सहसा महलो मे आगये, और रानी से हँसी-विनोद करने लगे।

रानी ने सलज्ज किंतु कठोर शब्दो मे कहा—"आप पर-पुरुष के सामने मेरी लाज गँवाते है, यह ठीक नही !"

राजा ने चौक कर पूछा—"यहाँ महलो मे पर-पुरुष कौन है ?"

रानी ने पालने में सोये सिद्धराज की ओर संकेत किया। तब उसकी आयु करीब दो माह की होगी। राजा ने इसे रानी का बहाना समझा और उसके साथ और भी हास्य-चेष्टाएं करने लगे। तभी बालक ने सहजभाव से

मुह फेर लिया। रानी को बालक के मुँह फेर लेने पर बडा ही खेद और ग्लानि हुई कि—हे भगवान् ! बालक ने मेरी लाज देखली ! और आत्म-ग्लानि के इस भयकर विप ने सचमुच ही उसकी जान ले ली।"

राजपंडित की बात सुनकर राजा के मन से अपने पुत्र को सिद्धराज जैसा वीर धीर बनाने की कल्पनाएं हवा होगई।

गौरव पूर्ण मातृत्व का यह एक उज्ज्वल पक्ष है। और नारी के हीन व भयसंत्रस्त मातृत्व का दूसरा रूप भी देखिए—

मुहम्मदशाह को बंदी बनाकर नादिरशाह ने जब लाल किलेपर अधिकार किया तो उसने एक कडी आज्ञा दी–"मृत बादशाह की समस्त बेगमे मेरे सामने आकर नाच दिखाएं।"

नादिरशाह के हुक्म से बेगमो के होश-हवास उडगये। जिन बेगमो ने कभी राजमहल की देहरी पार नही की, जिन का नाजुक मुखडा कभी सूरज और चॉद ने भी नही देखा, वे दरबार में आकर वेश्याओ की तरह पर-पुरुपो के सामने नाचे ? पर करे क्या ? नादिरशाह का हुक्म कौन टाल सकता ? बेगमे दीवाने–आम मे आकर नाचने को तैयार होगई। नादिरशाह मयूर-सिहासन (तख्ते-ताउस) पर लेटा था, सिरहाने नंगी तलवार चमचमा रही थी।

सहसा बादशाह की आँखे खुली—तेवर बदल कर गर्ज पडा—"चली जाओ! हट जाओ? मेरे सामने से! तुम्हारा नापाक साया पडने से कही मैं भी बुजदिल न बन जाऊं। तुम्हे अपनी अस्मत का भी ख्याल नही रहा, कि एक गैर-मर्द के सामने यो नाचने तैयार होगई। अच्छा होता ऐसी बेशर्मी के बदले जहर खाकर मर जाती, तुम में से किसी एक में भी कुछ साहस और होसला होता तो सिरहाने रखा खंजर मेरे सीने मे भोक नही डालती! ऐसी बुजदिल औरतो की औलाद क्या खाक राज करेगी! चली जाओ सब! मुझे औरतो का नाच नही देखना था, हौसला देखना था।" ...

नादिरशाह की झिडकी मे नारी की दीनता और मातृत्व की दुर्बलता पर गहरी चोट थी! ऐसी हीनमाता क्या वीर सतति को जन्म दे सकती है?

वास्तव मे वीर माता ही वीर संतान को जन्म दे सकती है। सच्चरित्र माता की प्रतिकृति होता है सच्च-रित्र पुरुष!

६१

आपका नाम…?

●

महाकवि कालिदास से धीर की परिभाषा पूछी गई तो चिंतनपूर्वक कवि की वाणी मुखर हो उठी—

विकारहेतौ सति विक्रियन्ते
येषां न चेतांसि त एव धीराः

विकार उत्पन्न होने की स्थिति सामने आने पर भी जिसका हृदय विकार-ग्रस्त नही बनता, वही वास्तव मे धीर-वीर है।

देखा जाता है, मनुष्य प्राय अपनी उच्चता, महत्ता और तेजस्विता का प्रदर्शन तो बहुत करता है, बडे-बडे नाम और विशेषणों का आडम्बर लगाकर दुनियाँ में चकाचोध पैदा करना चाहता है, पर जब अवसर आता है तो सारे प्रदर्शन और आडम्बर टाय-टाय फिस हो जाते है। विशेषणो के देवता के भीतर का राक्षस मुह फाडकर हुकारता दिखाई देने लगता है।

घटना है लगभग तीन शताव्दी पूर्व आगरा मे कविवर पं० बनारसीदास जी के युग की। एकबार कोई साधु आये। साधु के क्षमा और तपस्या आदि गुणो की प्रशंसा सुनकर कविवर भी दर्शन करने गए। कुछ बात चीत के बाद विनम्रता पूर्वक वोले—"क्षमा-सिंधु ! क्या मैं आप श्री का शुभ नाम जान सकता हूँ।"

"इस देह को शीतलप्रसाद कहते है ?"

कविवर ने नाम सुनकर अत्यंत प्रसन्नता व्यक्त की, पर यथानाम तथागुण की कसौटी करने के लिए वे कुछ देर बाद फिर साधु जी से नाम पूछ बैठे। साधु ने कुछ अन्यमनस्कता के साथ नाम दुहरा दिया। थोड़ी देर बाद फिर उन्होने नाम पूछा, तो साधु झुंझला कर बोले —"क्या घनचक्कर आदमी हो, दसबार कह दिया हमारा नाम है शीतलप्रसाद ! शीतलप्रसाद !" इस बार कविवर कुछ देर तक चुप रहे। थोडी देर बाद उठकर चलने लगे, तो फिर हाथ जोड कर नाम पूछ बैठे—महाराज ! आपका नाम ' एकबार और !"

इस बार साधु आगबबूला हो गये, बोले—"पूरे गधे हो तुम ! पचास बार कहदिया हमारा नाम है शीतल प्रसाद ! शीतलप्रसाद ! शीतलप्रसाद ! पर तुम हो कि दिमाग चाट रहे हो !"

साधु जी का यह प्रचण्ड कोप देखा तो वे बोल पड़े–

"महाराज ! आपका नाम शीतलप्रसाद नही, ज्वाला प्रसाद मालूम होता है।" और पंडित बनारसीदास, उठ कर चल दिए।

६२

स्वामी बनाम रक्षक

राष्ट्र की अपार सपत्ति जिन हाथो मे सुरक्षित रहती है, उसे राजा कहा जाता है। राजा राष्ट्र की संपत्ति और समृद्धि का स्वामी नही, मुक्त उपभोक्ता भी नही, वह तो केवल उसका रक्षक मात्र है। महाभारत मे राजा का आदर्श बताया है—जैसे भौरा फूलो की रक्षा करता हुआ उनसे मधु ग्रहण करता है, वैसे ही राजा भी प्रजा की रक्षा करता हुआ उसी की समृद्धि के लिए उससे कर रूप में धन ग्रहण करता है।

यथा मधु समादत्ते रक्षन् पुष्पाणि षट्पदः।
तद् वदर्थान् मनुष्येभ्य आदद्यादविहिंसया॥

—महाभारत ३४।१७

राजा के इसी आदर्श को गाधीजी ने 'ट्रस्टीशिप' का रूप दिया। भारतीय इतिहास मे इस प्रकार के राजाओ की कमी नही, जिन्होने राष्ट्र की सपत्ति का अपने स्वार्थ के लिए कभी भी दुरुपयोग नही किया,

बल्कि उसे प्रजा की संपत्ति मानकर उसकी रक्षा ही करते रहे ।

दिल्ली के सिहासन पर गुलामवशीय बादशाह नासिरुद्दीन का शासन था । वह बडा नीतिनिष्ठ एवं पुरुषार्थी शासक था । पुस्तके लिखने से जो आय होती, उसी से वह अपना जीवन निर्वाह करता । राजकोष से कभी एक पैसा उसने नही लिया । मुसलमान शासको की रिवाज के विपरीत उसके एक ही पत्नी थी । नौकर कोई भी नही था, यहाँ तक कि रसोई भी स्वयं बेगम को अपने हाथ से बनानी पडती ।

एकबार रसोई बनाते समय बेगम का हाथ जल गया । बेगम ने बादशाह से कुछ दिन के लिए नौकरानी रखने की प्रार्थना की तो बादशाह ने उत्तार दिया—

"राजकोष पर मेरा कोई अधिकार नही है, मेरे पास वह प्रजा की धरोहर मात्र है, उसमें से मैं अपने खर्च के लिए एक पैसा भी नही ले सकता, और मेरी स्वयं की कमाई इतनी नही है कि उसमें से नौकर रखने जितनी बचत हो सके, फिर तुम ही बताओ नौकरानी के लिए पैसा कहाँ से दोगी ?"

भारत जैसे विशाल देश के बादशाह की बेगम ने जब यह उत्तार सुना तो पता नही उसके मन मे क्या प्रतिक्रिया हुई होगी ··पर इतिहास ने इस बादशाह के चरित्र को राष्ट्र का महान आदर्श स्वीकार कर लिया है ··· ।

६३
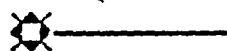
अंकुश, अपने हाथ में

●

एक प्रसिद्ध शेर है—

सहारा जो गैरो का तकती रही,
वे तस्वीरे वन कर लटकती रही !

दूसरो का आश्रय खोजने वाले तस्वीर जैसे दीवारो से लटकती है, वैसे ही पराश्रित होकर लटकते रहते है ।

जिनमे पुरुषार्थ, आत्म-विश्वास एवं स्वावलंबन की भावना प्रवल होती है, वे अभाव और प्रतिकूल परिस्थितियो मे जन्म लेकर भी उन्नति के शिखर की ओर वढते चले जाते हैं ।

नादिरशाह के सम्वन्ध मे प्रसिद्ध है कि वह एक दीन, साधन-हीन परिवार मे पैदा हुआ था यद्यपि वह क्रूर एवं युद्धप्रिय मनुष्य था, फिर भी अपने साहसी, एवं स्वावलंवी स्वभाव के कारण वह महान सेनापतियो की प्रथम पंक्ति मे गिना जाने लगा । वह दूसरो की सहायता के

भरोसे कभी नही चलता, जिस काम को करने मे स्वयं असमर्थ होता, उस काम में कभी हाथ नही डालता, चाहे वह कितना ही छोटा या बडे से बडा काम होता।

दिल्ली पर विजय करने के बाद पराजित बादशाह मुहम्मदशाह रंगीले ने उसे हाथी पर बिठाकर दिल्ली की सैर कराने का कार्यक्रम बनाया। नादिरशाह ने भारत आने पर ही सर्वप्रथम हाथी देखा था, फिर हाथी पर बैठने का तो प्रश्न ही क्या था! हाथी के होदे मे बैठने पर उसने हाथी की गर्दन पर महावत को अंकुश लिए बैठा देखा तो कहा—"तू यहाँ क्यो बैठा है? हाथी की लगाम मेरे हाथ में देकर तू नीचे उतर जा!"

महावत ने कहा—"हुजूर! हाथी के लगाम नही होती! इस को तो हम पीलवान ही चला सकते है।"

नादिरशाह ने चोक कर पीलवान की ओर देखा —"जिस जानवर की लगाम मेरे हाथ में नही, मै उस पर बैठ कर अपनी जिन्दगी खतरे में नही, डाल सकता" —यह कह कर नादिरशाह हाथी पर से कूद पडा।

क्या, जो मनुष्य अपने मन रूप हाथी का अकुश अपने हाथ में नही रख सकता, और फिर भी उस पर सवार हो रहा है, वह नादिरशाह की इस उक्ति से शिक्षा नही लेगा?

६४

सम्राटों के सम्राट

•

वीर कौन ?

जो आकाक्षाओ से कभी परास्त नही होता !

स बलो अनपच्युतः

—तैत्तिरीय ब्राह्मण १।५।६

सच्चा बलवान वही है, जो कभी आशा तृष्णा के वश हो कर अपने आत्म-धर्म से च्युत न हो।

कबीरदास ने कहा है—

चाह गई चिंता मिटी मनवा बे-परवाह !
जिसको कछु चाहना नहीं, सो शाहन का शाह !

वास्तव मे जिसे कुछ भी स्पृहा, कामना न हो, संसार में वह सबसे बडा विजेता और सम्राटो का भी सम्राट है। सम्राट भी उसके सामने स्वयं को तुच्छ अनुभव करते है।

यूनान में डाओजिनीस एक महान् निस्पृहीसंत हो

गए है। सिकन्दर महान् ने जब उसकी कीर्ति सुनी तो उसे अपने दरबार में बुलाने की कोशिश की। पर डाओ-जिनीस कभी किसी बादशाह और रईस के सामने नही जाता था। एक दिन स्वयं सिकन्दर ही डाओजिनिस से मिलने पहुचा। डाओजिनिस धूप मे लेटा था। सिकन्दर के आने पर भी वह वैसे ही लेटा रहा। उसके व्यवहार से सिकन्दर मन-ही-मन खिसिया गया। वह रोबीले स्वर में बोला—"मैं सिकन्दर महान् हूँ।"

"और मुझे लोग डाओजिनीस मिराकी कहते है" –लापरवाही से उसने उत्तर दिया।

सिकन्दर उसके व्यवहार से हतप्रभ था, वह स्वर बदलकर बोला–"मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ?"

निस्पृही डाओजिनिस का उत्तर था—"हां, इतना काम करो कि जरा धूप छोड कर उधर खडे हो जाओ।"

त्याग, और निस्पृहता के समक्ष विशाल साम्राज्य और अपार भोग-सामग्रिया जैसे धूल चाटने लग गई।

भाष्यकार आचार्य उव्वट के शब्दो मे ऐसे ही निस्पृह व्यक्ति योगी कहलाते है, उन्ही का योग मे अधिकार है–

निस्पृहस्य योगे अधिकारः—

(यजुर्वेदीय उव्वट भाष्य— ४०।१)

और वे ही योगी सम्राटो के सम्राट कहलाते है।

६५

मोहजाल

●

इस विराट् संसार में मनुष्य का अस्तित्व सागर मे एक बूंद के जितना भी है या नही—कौन जाने ? पर मोह एवं अहकार के वश हुआ वह सोचता है, "संसार मे मैं ही सब कुछ हूँ, मेरे समान दूसरा कोई नही ? मेरे जैसा कोई इतिहास में हुआ नही, और होगा भी नही !"

मोहग्रस्त प्राणी ज्ञानीजनो की इस वाणी को भूल जाता है—

नत्थि केइ परमाणुपोग्गलमेत्ते वि पएसे
जत्थ णं अयं जीवे न जाए व, न मए वावि ।

—भगवती सूत्र १२।७

इस विराट विश्व में एक परमाणु जितना भी ऐसा कोई क्षेत्र (प्रदेश) नही है, जहाँ पर तुमने (इस जीव ने) अनेकोबार जन्म एवं मृत्यु का चक्कर नही लगाया हो ।

यहाँ असंख्य-असख्य तीर्थङ्कर हो गए, असख्य चक्रवर्ती सम्राट इस धरती पर आये, हँसे और रोते हुए चले गए, किसी की कोई गणना नही, फिर किस बात का अहकार ! और किसका मोह ?

कहते है, जब विश्वविजेता सिकन्दर मृत्यु शय्या पर पडा अंतिम दमतोड रहा था तो उसकी मां पागल-सी होकर रो रही थी—"ऐ मेरे लाडले लाल ! अब मैं तुझे कहाँ पाऊंगी ?"

बूढी मा को सान्त्वना देने के विचार से सिकन्दर ने कहा—"अम्मीजान ! सत्रहवी वाले रोज मेरी कब्र पर आकर पुकारना मैं अवश्य ही मिलूँगा।"

पुत्र वियोग के १७ दिन बडी मुश्किल से गुजारने के बाद सत्रहवी रात को सिकन्दर की मा कब्र पर पहुँची। कुछ देर इधर-उधर तलाश करने के बाद उसे अधेरे में पावो की धीमी सी आहट सुनाई दी।

उसने पुकारा—"कौन ? बेटा सिकन्दर !"

उत्तर आया—"कौन से सिकन्दर की तलाश कर रही हो ?"

मा ने अधीर होकर कहा—'सिकन्दर ! दुनिया का शाहंशाह ! एक ही तो सिकन्दर था वह इस जहान मे।"

एक भयानक अट्टहास के साथ आवाज आई—"अरी बावली ! कौन सा सिकन्दर ! कैसा सिकन्दर ! यहाँ तो

मिट्टी के कण-कण मे हजारों सिकन्दर सोये पडे हैं !" और सिकन्दर की लंबी चौडी हजारो छायाएं बुढिया के सामने नाच उठी । बुढिया भयभीत हो उठी, उसकी मोह नीद खुली-"अरे ! दुनिया के जर्रे-जर्रे में सिकन्दर सोये पड़े है... मैं किस लिए बावली हो रही हूँ ?"

६६
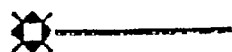
भामाशाह का त्याग

●

संसार में धन का मोह सबसे बडा है। धन के लिए अनेक युद्ध एवं संघर्ष होते रहे है। धन का त्याग करने वाला-इसलिए महान माना गया है, चूकि वह अपनी दुर्दान्त इच्छा और तृष्णा का दमन करके धन का विर्सजन करता है, और उसे देश एव समाज के हित मे लगाता है। भारतीय इतिहास मे दानवीर भामाशाह का नाम इसीलिए आज भी अमर है, कि उन्होने देश की स्वतंत्रता के कठिन संघर्ष मे राणाप्रताप को जो उदार सहयोग कर देशभक्ति एवं अपूर्वत्याग का परिचय दिया, वह वस्तुतः ही महान् था। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने भामाशाह के इस अपूर्व त्याग के सम्बन्ध मे कहा है—

जा धन के हित नारि तजै पति
पूत तजै पितु शीलहिं खोई।

भाई सों भाई लरै रिपु से पुनि
मित्रता मित्र तजै दुख जोई।
ता धन को बनिया ह्वै गिन्यो न,
दियो, दुख देस के आरत होई।
स्वारथ आर्य, तुम्हारो ही है
तुमरे सम और न या जग कोई।

जिस धन सम्पत्ति के लिए—कैकेयी ने राम को वन-वास दिलाया, पाण्डव-कौरवों ने अठारह अक्षौहिणी सेना का संहार कर डाला, और जिस धन के लिए बड़े-बड़े युद्ध, नरसंहार और प्रलय होते रहे, उस धन के मोह (वनिया होकर भी) भामाशाह ने त्याग कर देश की सेवा के लिए अर्पण कर दिया—सचमुच यह एक महान् त्याग है।

भामाशाह के पिता भारमल भी पहले राणाप्रताप के मंत्री थे। उनके स्वर्गवास पर भामाशाह को मंत्री पद पर नियुक्त किया गया। भामाशाह एवं उनका भाई ताराचन्द दोनो ही राणा के विश्वस्त सेवक व वीर योद्धा थे। भामाशाह का हृदय बहुत ही उदार था। हल्दी-घाटी के युद्ध में भामाशाह ने भी अपनी तलवार का चमत्कार दिखाया था। *

---

* हल्दीघाटी का यह विख्यात युद्ध सन् १५७६, १८ जून को एक घडी दिन चढे प्रारम्भ हुआ और सायंकाल तक समाप्त होगया था।—देखे 'चांद' वर्ष ११—पूर्ण संख्या १२२, पृष्ठ ११८

हल्दीघाटी के युद्ध मे २१ हजार राजपूत वीरों ने स्वतंत्रता की वेदी पर अपने प्राणो की आहुति दे दी, फिर भी मेवाड यवनो के द्वारा आक्रात होने से न बच सका। राणाप्रताप अपने बचे-खुचे साथियो के साथ वीरान जंगलो मे घूमते हुए मेवाड के पुनरुद्धार के लिए खून-पसीना बहा रहे थे। पर अब न उनके पास बडी सेना थी, और न सेना को खुराक देने के लिए अर्थ भी रहा। स्थिति यहाँ तक विकट बन गई कि राणा स्वयं भी जंगली घास की रोटियाँ बनवाते और आधो रोटी सुबह और आधी रोटी शाम को खाकर भी यवनो से लोहा लेते रहे।

एकबार जंगली अन्न (घास) की रोटियाँ बन रही थी, और एक छोटी बच्ची मारे भूख से विलख रही थी। उमे आधी रोटी दी गई, बच्ची रोटी पाकर नाचने लगी। तभी एक जंगली बिल्ली ने लडकी के हाथ से रोटी झपट ली। बच्ची चिल्ला उठी। राणा ने बच्चो की जब यह दुर्दशा देखी तो उनका चट्टान-सा हृदय भी बर्फ की भाँति पिघल गया। आँखे भर आई। राणा ने मेवाड छोडकर जाने का विचार किया।* तभी देशभक्त भामाशाह अपने पूर्वजो की सपत्ति लेकर राणा के चरणो में आकर उपस्थित हुए—"हिन्दुकुलसूर्य! मेवाड़ का भाग्य आपके

---

* अकबर से संधि करने का निश्चय कर लिया—ऐसा भी कही-कही लिखा गया है।

हाथो मे है, लीजिए यह सेवक चरणों में हाजिर है, यह सपत्ति, यदि देश व धर्म की रक्षा के लिए काम नही आयेगी तो फिर यह मिट्टी है।"†

उस अपार धनराशि को यो देश रक्षार्थ समर्पित होते देखकर राणा का हृदय खिल उठा। उनका अपराजित बल, साहस और शौर्य हुंकार उठा। भामाशाह को राणा ने छाती से लगा लिया—"इस मेवाडभूमि की रक्षा का श्रेय मुझे नही, तुम्हे मिलेगा! तुम्ही मेवाड़ के उद्धारकर्ता हो।"

भामाशाह के अपूर्व त्याग के सम्मान मे उनके वंशजो का उदयपुर राज्य मे सदा प्रथमस्थान रहा, और उस प्राचीन गौरव की स्मृति स्वरूप नगर मे प्रत्येक उत्सव व नगरभोज के समय सर्वप्रथम तिलक उन्ही के वंशजो का किया जाता रहा।

'वीर विनोद' (पृ० २५१) के अनुसार भामाशाह का जन्म संवत् १६०४ आषाढ सुदी १० (ई० १५४७ जून २८) को, तथा मृत्यु संवत् १६५६ माघ शुक्ला ११ (ई० १६०० जनवरी २७) को हुआ। मृत्यु के एकदिन पूर्व उन्होने

---

† कर्नल जेम्सटॉड के कथनानुसार भामाशाह ने राणा को जो धन भेट किया वह इतना था कि २५ हजार सैनिको का १२ वर्ष तक निर्वाह हो सकता था।

—देखिए टाड राजस्थान जि० १ पृ० २४६

अपनी पत्नी को एक बही दी, जिसमें मेवाड़ के खजाने का कुल हिसाब-किताब लिखा हुआ था। भामाशाह के बेटे जीवाशाह को महाराणा अमरसिंह ने अपना प्रधान मंत्री बनाया।

६७

राजा का आदर्श

●

शरीर के रक्षण, भरण पोषण में जो स्थान 'मुख' का है, वही स्थान राष्ट्र के संरक्षण, संस्कार, न्याय एवं पोषण की दृष्टि से राजा का है, अत. उसे भी 'राष्ट्र का मुख' या 'प्रमुख' कहा जाता है। इसीलिए कहावत भी है–'मुखिया मुख सम चाहिए।'

राजा न केवल प्रजा की रक्षा करता है, किंतु अपने उच्चे आदर्शों के द्वारा उसके जीवन में सुन्दर और महान् सस्कारो का अंकुरण भी करता है।

ऋगवेद के एक मंत्र मे कहा गया है—

विशस्त्वा सर्वा वांच्छन्तु मा त्वद् राष्ट्रमधिभ्रशत्

—ऋग्वेद १०।१७।१

–राजन् ! सब प्रजा तुम्हे हृदय से चाहती रहे, तुम्हारे आदर्शो पर अनुगमन करती रहे। तुम से कभी राष्ट्र का, प्रजा का कोई अमगल न हो, इसका ध्यान रहे।

राजा के इस आदर्श का प्रतिबिम्ब देखिए—

एकबार जयपुर के राजा सवाईजयसिह महलो की छतपर घूमते हुए उष काल की रमणीय छटा देख रहे थे। सहसा उनकी नजर सामने की छत पर पडी, जैसे साप पर पैर पड़ गया हो, राजा तुरत चौक कर उल्टेपाव नीचे उतर आये। उनके चेहरे पर एक भारी विषाद की मलिनरेखा थी। राजपंडित को बुलाकर महाराज ने पूछा—"यदि कोई पिता अपनी तरुण पुत्री को अकस्मात् नग्न देखले तो उसे क्या प्रायश्चित्त करना चाहिए ?"

पंडित ने निवेदन किया—"महाराज ! इस प्रकार का विधान तो मैंने कही देखा नही, फिर भी धन-धान्यादि से उसे संतुष्ट कर पश्चात्ताप कर लेना चाहिए।"

राजा ने अपने व्यक्तिगत कोश से ५ हजार रुपए नगद देते हुए मंत्री से कहा—"हमारे महल के पड़ौस मे जो अमुक घर है, उसमे रहनेवाली महिला को यह धनराशि देकर हमारी ओर से क्षमा मॉगते हुए कहना—"महाराज ने छतपर चढते हुए आपकी ओर भूल से दृष्टि उठाली, इस असावधानी के कारण उन्हे बहुत पश्चात्ताप हुआ। प्रायश्चित्त स्वरूप ये ५ हजार रुपए भेजे है और पुत्री को विश्वास रहे कि भविष्य मे बिना सूचना के कभी भी महाराज छतपर नही आयेगे।"

मंत्री राजा की गंभीर मुखमुद्रा को देख रहा था कि राजा ने आगे कहा—"मंत्रिवर ! प्रजा हमारी संतान है,

यदि हम ही अपनी बहू-बेटियो की इज्जत नही करेगे तो लुच्चे-लफंगो को किस मुह से दण्ड देगे ?"

राजा जयसिह के उच्च नैतिक आदर्श के समक्ष न केवल मत्री ही विनत हुआ, पर इतिहास आज भी उसके आदर्शों से शिक्षा दे रहा है।

६८

मनुष्य की खोपड़ी

•

विश्व में एक ऐसा महागर्त है जो एक नही, हजार-हजार सुमेरु पर्वतों से भी नही भर सकता ? संसार भर का समस्त धन, धान्य और पदार्थ उस गर्त को पूरा नही कर सकते ?

वह गर्त क्या है ?

वह है मनुष्य का मन ! मानव का मस्तिष्क ! महान विचारक भगवान् महावीर ने मानव मन की इस दुष्पूरता को लक्ष्य करके कहा है—

सव्वं जगं जइ तुभं सव्वं वावि धणं भवे
सव्वं पि ते अपज्जत्तं नेव ताणाय तं तव !

—उत्त० १४।३९

—यदि इस जगत का समस्त धन भी तुम्हें दे दिया जाय तब भी वह तुम्हारी इच्छाओ को पूरा करने मे

अपर्याप्त होगा और न मृत्यु से तुम्हे बचा सकेगा ।

एक प्राचीन कथा है । एक देश मे नया शासक सिहासन पर बैठा । शासक बडा महत्वाकॉक्षी और साम्राज्य-प्रेमी था । उसने अपने बाहुबल से दूर-दूर तक के प्रदेशो पर विजयध्वज फहराया और लोगो से कर वसूल करके राजकोष को भरना शुरू किया । वह विजयध्वजा फहराता हुआ समुद्र के किनारे तक पहुच गया ।

राजा ने विशाल समुद्र को गर्जते हुए देखा । उसने अपने मंत्रियो से पूछा—"इस ने हमारे राज्य की बहुत बडी भूमि दबा रखी है, सैकडो योजन मे अपना विस्तार कर रखा है, आखिर हमें यह क्या कुछ 'कर' देता है या नही ?"

मंत्री ने आश्चर्यपूर्वक नये राजा की ओर देखकर कहा–"महाराज ! समुद्र क्या 'कर' देगा ? पर इससे हमारे राज्य को बहुत लाभ है !"

राजा–"लाभ की बात मैं नही पूछता, कुछ कर भी तो देना चाहिए । बिना कर लिए इसे हम अपने राज्य में नही रहने देगे ।" मंत्री मौन था । राजा ने सेना को आदेश दिया—"समुद्र के साथ युद्ध शुरू कर दो ।" राजा की आज्ञा से बारूद, गोले समुद्र की छाती पर वर्षाए गये, तोपो की गड़गडाहट से समुद्र का अन्तस्तल क्षुब्ध हो उठा ।

बहुत दिनो की लडाई के बाद एकदिन समुद्र का देवता वरुण प्रकट हुआ । एक ओजस्वीवाणी मे उसने

कहा–"राजन् ! यह निरर्थक युद्ध बंद करो ! क्या चाहते हो, वोलो ?"

राजा ने रोवीले स्वर में कहा—"तुम ने हमारी विशाल भूमि रोक रखी है, इसका 'कर' दो।"

"समुद्र से भी 'कर' चाहिए …?"

"हां ! अवश्य ! बिना कर दिए मेरे राज्य में कोई नही रह सकता !"

वरुणदेव ने समुद्र की गहराई में एक डुबकी लगाई और उत्ताल लहरो के साथ एक मानव खोपडी राजा के चरणो मे आ गिरी। राजा आश्चर्यपूर्वक देख रहा था, तभी एक गभीर ध्वनि उठी–"राजन् ! देख क्या रहे हो ! यह खोपडी ही मनुष्य को परेशान करती है, यह कभी नही भरती। यदि यह भर जाती और तृप्त हो जाती तो तुम सब कुछ पाकर भी समुद्र से कर मांगने नही आते …!"

कराकांक्षी राजा चिंतन मे डूब गया–"क्या सचमुच यह खोपडी नही भरती ….?"

६८

मन की बात

●

एक कहावत है—दिल, दिल को पहचानता है। मन, मन की भाषा समझता है, मन में जो विचार लहरें उठती हैं, दूसरा मन उनका प्रतिबिम्ब पकड़ लेता है। यदि मन में भलाई की कल्पना उठ रही है, तो दूसरे का मन स्वयं उसके प्रति अनुरक्त हो जाता है। मन यदि किसी को धोखा देना चाहता है, तो दूसरा मन स्वयं उससे साव-धान हो जाता है। इसीलिए तथागत ने कहा है—

संकप्पा काम जायसि

—महानिद्देस पालि ११

काम—संसार, संकल्प से ही पैदा होता है, जैसा संकल्प मन मे उठता है, वैसा ही संसार बन जाता है। इसी वात को आरण्यक में यों बताया गया है—

चित्तमेव हि संसारः
यच्चित्तस्तन्मयो भवति

—मैत्रा० आरण्यक ६।३४

चित्त ही संसार है, जैसा चित्त वैसा ही मित्त—जैसी भावना होती हैं, वैसी ही भाविनी बन जाती है।

एक प्राचीन लोककथा है—

एक बुढिया सिर पर गठरी लिए चल रही थी। उसके निकट से एक घुडसवार निकला तो बुढ़िया ने दीनतापूर्वक कहा—"वीरा! जरा यह गठरी अपने घोडे पर रख ले, और आगे चौराहे पर प्याऊ है वहाँ रख देना।"

घुडसवार ने ऐंठकर कहा—"मैं क्या तेरे बाबा का नौकर हूँ, जो तेरा सामान लाद के घूमता रहूँ।" और घुडसवार आगे चला गया। थोड़ी देर बाद उसके मन में आया—"मैंने तो बडी गलती की। गठरी ले लेता और आगे निकल जाता तो वह बुढिया क्या कर सकती थी? सब माल हजम हो जाता....!" यह सोचकर उसने घोडा वापस मोडा, और बुढिया के पास आकर मीठे स्वर में बोला—"बुढिया माई! ला, रख दे घोड़े पर गठरी, आदमी को आदमी के काम आना ही चाहिए, वहाँ प्याऊ पर रखता जाऊँगा, ला धर!"

इधर बुढिया भी अपनी भूल पर सोच रही थी—

यदि उस अनजाने घुड़सवार को गठरी दे देती, और वह नौ दो ग्यारह हो जाता तो मैं क्या करती ?" घुड़सवार को लौटा देखकर वह बोली—"बेटा ! वह वात तो गई, जो तेरे दिल में कह गया वह मेरे कान मे भी कह गया । चल, अपना रास्ता नाप !"

सच है, दिल, दिल का गवाह होता है ।

७०

सिद्धि या ईश्वर

●

उपनिषद् में एक स्थान पर बताया है-विद्वान, धीर, विचक्षण वह है जो प्रेय (भौतिकसिद्धि) का त्याग कर श्रेय (आत्म-लाभ) का वरण करता है।

श्रेयो हि धीरोऽभिप्रेयसो वृणीते
प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद् वृणीते,

—कठ उपनिषद् २।२

एक प्राचीन लोक श्रुति है कि भक्त हनुमान की सेवाओ पर प्रसन्न होकर जगज्जननी सीता ने हनुमान को अपना बहुमूल्य रत्नहार पुरस्कार मे दिया। भक्त श्रेष्ठ हनुमान ने उस में की एक मणि तोडी और सूर्य के सामने कर के उसे परखने लगे जैसे जौहरी रत्न की परीक्षा कर रहा हो।

मुस्कराकर सीता ने पूछा—"हनुमान ! यो क्या देख

रहे हो ? क्या मणि खोटी है ?"

हनुमान ने विनयपूर्वक कहा—"मात ! मैं देख रहा हूँ इस बहुमूल्य मणि में 'राम' है या नही ?"

"यदि नही हो तो....?" आश्चर्यपूर्ण जिज्ञासा से सीता ने पूछा।

"तो हनुमान के काम का नही ! हनुमान को तो वही वस्तु प्रिय है जिस में 'राम' हो।" एकनिष्ठ भक्त हनुमान का उत्तर था।

यह 'राम' ही श्रेय है। रत्न (प्रेय) हनुमान (भक्त) को प्रिय नही होता, उसे तो राम (श्रेय) ही इष्ट होता है।

ऐसा ही एक मधुर प्रसंग है स्वामी विवेकानद के जीवन का।

एक बार रामकृष्ण परमहस ने श्री नरेन्द्रनाथ (स्वामी विवेकानद) को अपने निकट बुलाकर कहा—"मैं तुम्हे अष्ट-सिद्धि प्रदान करना चाहता हू। तुझे बहुत बड़े-बडे धर्म कार्य करने है, तुझे इनकी आवश्यकता होगी। बोल लेगा ?"

एक मुहूर्त स्तब्ध होकर नरेन्द्रनाथ ने पूछा–"इससे क्या मुझे ईश्वर-लाभ होगा ?"

"नही, इससे ईश्वर-लाभ तो नही होगा।" गंभीर होकर परमहंस ने उत्तर दिया।

अनासक्त भाव से नरेन्द्रनाथ बोले—"जिन शक्तियो

से मुझे ईश्वर लाभ न होकर केवल लोक-मान्यता ही मिले, उसकी मुझे आवश्यकता नहीं है।"

वास्तव में वही विभूति श्रेष्ठ होती है जो ईश्वरानुभूति में सहायक हो, वही शक्ति उत्तम है, जो विरक्ति की प्रेरक हो।

७१
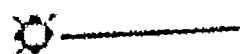
धर्म का सार

●

उपनिषद् का एक वाक्य है—

तस्मै तपो दमः कर्मेति प्रतिष्ठा

—केन उपनिषद् ४।८

आत्मज्ञान की प्रतिष्ठा—अर्थात् बुनियाद तीन बातो पर टिकी हुई है—तप, दम (इन्द्रियनिग्रह) और सत्कर्म ! ज्ञान इन्ही तीन माध्यमो से प्रकाशित होना चाहिए और उन्ही पर धर्म स्थिर रह सकता है।

आज ज्ञान और कर्म को अलग-अलग देखने की वज्र-भूल हो रही है। दैनिक जीवन व्यवहार जैसे कोई भिन्न विषय हो, और अध्यात्म कोई भिन्न वस्तु हो—ऐसा भ्रात-विश्वास लोगो में बन गया है।

बौद्धग्रन्थ 'ध्यानपद्धति सार' मे एक कहानी है। चीन मे एक 'ताओ-त्रू' नामक संत का शिष्य था 'चुङ्-

सिन' एक दिन वह अपने गुरु के पास आकर बोला—"जिस दिन से मैं आपके पास आया हू, आपने मुझे धर्म का सार क्या है, इस विषय मे कभी कुछ नही कहा।"

गुरु ने उत्तर दिया—"जब से तुम यहाँ आये हो, मैं निरंतर तुम्हें धर्म का सार बताता रहा हूँ। जब तुम चाय के प्याले को लेकर मेरे पास आए हो, तो मैं सदा उसे प्रेम और शालीनता[illegible] स्वीकार किए बिना नही रहा। जब तुमने हाथ जोडकर आदर पूर्वक मुझे प्रणाम किया, तो मैं भी विनयपूर्वक अपना सिर झुकाये बिना नही रहा। अब तुम ही बताओ। मैंने कब तुम्हे धर्म का उपदेश नही दिया। तुम्हारी भ्राति यह है कि तुम धर्म को दैनिक जीवन के व्यवहारो से भिन्न उपदेश की वस्तु मानते हो, इसलिए इन धर्ममय व्यवहारो को धर्म की शिक्षा नही समझते, और मैंने प्रेम, सद्भाव, शाति और विनय मे ही धर्म की शिक्षा दी है।"

शिष्य मौन होकर गुरु के जीवन में धर्म का सार देखने लगा, और प्रसन्न भाव से चरणो में झुक गया।

७२
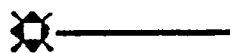
दृढ़ संकल्प

•

मन मे ध्येय के प्रति दृढसकल्प हो, और साहस के साथ जुटे रहने का जीवट हो, तो फिर फल की प्रत्याशा किए बिना जो अपने कार्य मे जुटा रहता है, उसके लिए क्या असंभव है ? दुष्प्राय को प्राप्त करना, असंभव को सभव वनाना, फिर कोई बडी वात नही होती।

तथागत बुद्ध के जीवन से सम्बधित धर्मो-साहित्य मे एक धर्मकथा प्रसिद्ध है। एकबार तथागत बोधि की खोज मे भटक-भटक कर हिम्मत हार चुके थे। वापस कपिलवस्तु के राजमहल मे लौटने के संकल्प ने उनके चरण उस ओर बढा दिये थे। चलते-चलते वे एक झील किनारे विश्राम के लिए कुछ क्षण रुके। वहा एक गिलहरी पर सिद्धार्थ की दृष्टि पडी। वह बार-बार पानी के पास जाती, अपनी पूछ उसमे डुबाती और फिर आकर रेत पर उसे झटक देती।

"नन्ही गिलहरी ! यह क्या कर रही हो ?"—सिद्धार्थ ने पूछा।

"इस झील को सुखा रही हू"—गिलहरी ने गर्व के साथ उत्तर दिया।

"तुम से यह काम असंभव है, भले तुम हजार बरस जियो, और करोडो अरबो बार अपनी पूछ पानी मे डुबा कर झटको, परतु तुम झील को कभी नही सुखा पाओगी!"

"अच्छा ! तुम ऐसा मानते हो ? पर मैं तो किसी काम को असभव नही मानती, जब तक जीऊगी अपना काम करती रहूँगी।"—गिलहरी बोली।

सिद्धार्थ के हृदय में एक प्रकाश फैल गया। मन की निर्बलता हवा हो गई, और एक वज्रसंकल्प लिया—
"जनन-मरणयोरदृष्टपारो नाहं कपिलाह्वयं प्रवेष्टा"
—जब तक बोधि प्राप्त कर जन्म-मरण का पार न देख लू, मैं भी कपिलवस्तु की ओर नही लौटूगा।

और तप निरत होकर एकदिन बोधिलाभ कर सिद्धार्थ ने बुद्धत्व प्राप्त कर ही लिया।

७३

चरित्र वैभव

•

तथागत बुद्ध ने कहा है—नारी का नैसर्गिक सौन्दर्य है-शील! इस सौन्दर्य को दरिद्रता मलिन नही कर सकती, बुढापा चुरा नही सकता और दुष्टता इसे दूषित नही कर सकती।

भारतीय नारी के शील की गाथा विश्व साहित्य के कण-कण मे उसी प्रकार रमी हुई है, जैसे ईख के पोर-पोर में मधुर रस।

कन्नड के महाकवि वल्लत्तोल्ल ने बादशाह हुमायू के युग की एक भारतीय ललना के शील सौरभ के साथ हुमायू के चरित्र वैभव की एक लघु कथा लिखी है—

मुगल सम्राट हुमायू एक बार दिल्ली के राजपथ से गुजर रहा था कि किसी छोटे से घर की गोख में बैठी एक सुन्दरी पर बादशाह की दृष्टि पहुँच गई। सुन्दरी के सहज, स्निग्ध सौन्दर्य पर बादशाह मुग्ध हुआ कुछ देर एकटक

देखता रहा, और फिर आगे चला गया।

बादशाह का दरबारी नौकर था—उस्मान। उसने बादशाह की प्रेम-मुग्ध-नजर पहचानी, और सोचा "यदि इस स्त्री को बादशाह के महलो में पहुँचा दूं तो बस, बादशाह प्रसन्न हो जायेंगे और मेरी तकदीर खुल जायेगी।" दुष्ट उस्मान ने छल-कपट करके उस कुलीन हिन्दू रमणी को एकदिन अपने चंगुल में फंसा लिया।

वह स्त्री डरी-सहमी, भय से काँपती उदास हुई उसके घर में बैठी थी। उस्मान ने उसे खुश करने के लिए कहा—"मैं तुम्हारे दिव्य सौन्दर्य का मूल्य कराना चाहता हूँ, अब तुम किसी टूटी-फूटी झोपडी में नही, किंतु शाह-शाह हुमायू के राजमहल मे आनन्द करोगी। कल तुम भारत की साम्राज्ञी बनोगी और मैं उस वक्त तुम्हारा प्रधानमंत्री' रहूँगा—

"एन्नवलि तोर्कणम, मूटल मञ्चान्नौरू"।

मूर्ख उस्मान के दिवास्वप्नो पर कुलीन रमणी ने घृणापूर्वक थूक दिया। रात्रि के समय बादशाह महलो में अकेला टहल रहा था, तभी उस्मान आँसुओ से भीगी उस सुन्दरी को बादशाह के सामने ले आया। क्षण भर जैसे बिजली चमक गई हो, बादशाह चकित हुआ उस दैवी-सौन्दर्य को देखता रहा।

बादशाह की प्रेम–पिपासु आँखे और पुलकता हुआ चेहरा देखकर उस्मान का दिल बल्लियो उछलने लगा।

उसे पूरा विश्वास हो गया, बस अब उसे प्रधानमंत्री बनने में तनिक भी देर नही होगी।

बादशाह ने उस स्त्री से पूछा—"तो, तुम्हे हमारी बेगम बनना मंजूर है ?"

नारी ने मुंह फेर कर कहा-"मैं एक विवाहित हिन्दू नारी हूँ, मेरे लिए मेरा पति ही बादशाह है, वही मेरा भगवान है। आप के इस बदमाश नौकर ने धोखा देकर जबर्दस्ती मुझे यहाँ उपस्थित किया है !"

सुनते ही बादशाह की भृकुटियां तन गई-"उस्मान ! तुम ने एक बादशाह को शैतान समझ लिया ? एक विवाहित हिन्दू नारी का धर्म नष्ट कर हमें भी अपने राजधर्म से भ्रष्ट करने का यह दु साहस किया तुमने !"

उस्मान काँप उठा। बादशाह ने रक्षकों के बुलाया और आज्ञा दी-"इस गद्दार और प्रजाद्रोही को डालदो जेलखाने में।" फिर उस स्त्री की ओर मुडकर नम्रस्वर में बोला-"देवि ! क्षमा करना ! हमारे एक नालायक नौकर ने आपको बहुत तकलीफ दी। यदि आप कुमारी होतीं और हमें अपना पति स्वीकार करती तो हम अपने को भाग्यशाली समझते। पर, आप तो किसी की अमानत है। हम बाइज्जत आपको अपने घर पहुँचा देते हैं।"

स्त्री का मुख मंडल प्रसन्नता से खिल उठा। उसने नीची आँखें झुकाए ही हाथ जोड़े-"जहाँपनाह ! आप प्रजा के पिता है। मुझ पर आपने इतनी कृपा की है तो

अब एक कृपा और कीजिए !"

बादशाह विस्मय और उदारता के साथ बोला-"कहिए ! आप क्या चाहती है।"

"यही कि इस भृत्य का अपराध माफ कर दीजिए।" नारी ने सहजभाव से कहा।

हुमायूं के मुह से बरबस 'वाह ! वाह !' निकल पड़ा। उसने मन-ही-मन उस देवी को प्रणाम किया, फिर आभूषणों से सजाकर विदा देते हुए कहा-"तुम ने अपने धर्म की ही नही, किंतु हमारे धर्म की भी रक्षा की है और एक गरीब जान की भी !"